महात्माजी और महाराज

ज्ञानमण्डल ग्रन्थमालाका ८९वाँ ग्रन्थ

महात्माजी और महाराज

[भूदान कार्यकर्त्ता श्री रविशंकर महाराजके कहे हुए
पूज्य बापूके संस्मरण]

लेखक
प्रो० डॉ० विपिनचन्द्र जीवणचन्द्र झवेरी
एम. ए., पी-एच. डी.

वाराणसी
ज्ञानमण्डल लिमिटेड

मूल्य : एक रुपया पचास नये पैसे

.सौर माघ, संवत् २०१५

प्रकाशक—ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी (बनारस)—१
मुद्रक—ओम्प्रकाश कपूर, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, ५४१८—१५

मेरी बात

इस छोटी-सी पुस्तकमें श्री रविशंकर महाराजके मुखसे पूज्य बापूके सम्बन्धमें सुनी हुई कतिपय बातोंको मैंने एकत्र किया है। पूज्य गांधीजीको महाराजश्री किस दृष्टिसे देखते थे—यह बात इस संग्रहमें तीन-चार जगह दिखायी गयी है।

यह पुस्तिका गुजराती भाषामें बहुत लोकप्रिय हुई—उसे पाठ्य-पुस्तक होनेका सौभाग्य भी प्राप्त हुआ—इससे उसे हिन्दीमें प्रकाशित करानेकी इच्छा हुई। उसीके परिणामस्वरूप आज यह पुस्तक भारतके विशाल पाठकसमूहकी सेवामें सादर प्रस्तुत कर रहा हूँ। इसका बंगाली और अंग्रेजी संस्करण भी तैयार हो रहा है।

पुस्तक छपनेके पहले महाराजश्रीने इसे देख लिया है। श्री काका साहब कालेलकर, स्व० नरहरि भाई पारिख, पं० सुखलालजी, श्री बबल भाई मेहता इत्यादि सज्जनोंने इस किताबको देखकर, अत्यन्त उपयोगी सूचनाएँ देनेकी कृपा की है और इसे निर्दोष बनाकर पूज्य बापूकी यशावलिमें थोड़ी-सी वृद्धि करनेका मुझे मौका दिया है। इसके लिए मैं श्री महाराज और उक्त सभी सज्जनोंका चिर-ऋणी हूँ।

हिन्दी संस्करण तैयार करनेमें सुश्री भानुमती पारिख और कुमारी लताबहन गोरडियाने खूब हाथ बँटाया है, जिसके लिए मैं उनका बहुत ही अनुगृहीत हूँ। बम्बईके सेण्ट जेवियर्स कालेजके हिन्दीके प्राध्यापक श्री नथवाणीजीने पाण्डुलिपिपर एक नजर डालनेका जो कष्ट किया है उसके लिए मैं उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

बहाउद्दीन कालेज
जूनागढ़
१९–८–'५८

—विपिनचन्द्र, जीवणचन्द्र झवेरी

प्राक्कथन क्यों ?

बापूके विचार एवं आचारमें इतना सामंजस्य था कि उनके विचारसे आचारका और आचारसे विचारका पता चल जाता था। यदि आचार और विचारमें असमानतावाला मनुष्य उनके विषयमें लिखे तो वह वर्णन अधूरा ही होगा, क्योंकि ऐसे मनुष्यके लिए बापूको सम्पूर्णतः समझना मुश्किल है। फिर भी मनुष्यसुलभ स्वभावानुसार अधूरी एवं तोतली भाषामें मैंने ये बातें कही हैं। उसके लिए प्रस्तावना क्या ?

रविशंकर व्यासका वन्दे मातरम्

अनुक्रम

१. तद्दूरे तदन्तिके

महाराज कहते हैं,

"मैंने गांधीजीको सर्वप्रथम १९१६ ई०में देखा।

"तत्पश्चात् मैं उनकी मृत्युपर्यन्त उनके प्रत्यक्ष परिचयमें बहुत नहीं रहा। लेकिन मुझे इस बातका विशेष दुःख नहीं।

"दुःख इसलिए नहीं कि मेरी एक निराली ही धारणा है। मैं मानता हूँ कि महापुरुषोंके साथ रहनेसे हमारी नजर उनके खान-पान उनके मल-मूत्र, उनकी विशिष्ट आदतोंकी ओर जाती है। लेकिन इससे हम प्रायः कुछ अधिक प्राप्त नहीं कर सकते।

"महान् पुरुषोंके साथ रहनेसे मनुष्यकी दृष्टि उनकी देहमें ही गड़ी रहती है। उनके विचार और आत्माकी ओर नहीं जाती। यदि सच पूछो तो यह एक महत्त्वकी चीज है।

'अलबत्ता, मेरे कहनेका तात्पर्य यह नहीं कि महान् पुरुष या किसीके भी शरीरकी उपेक्षा की जाय। आवश्यकता होनेपर उनके शरीरकी शुश्रूषा करनी ही चाहिये। यदि वे बीमार हों तो सेवाके अतिरिक्त उनका मलमूत्र साफ करनेमें भी हिचकना नहीं चाहिये। परन्तु ऐसे विशेष प्रसंगको छोड़कर महापुरुषके शरीर-सान्निध्यके बजाय उनके विचार और उपदेश-सान्निध्यकी दृष्टि विशेष रखनी चाहिये।

"और...सामान्यतः महात्माजी मुझसे दूर होते हुए भी दूर नहीं थे। उनके दर्शन एवं उनके शरीर-सान्निध्यकी मेरी इच्छा तुरन्त ही पूर्ण होती थी। आँख मूँदनेपर मैं उनकी मूर्तिका दर्शन कर सकता था। मुझे किसी बातमें सन्देह होता और उस समय यदि मैं आश्रममें ही ठहरा रहता था, तो भी क्वचित् ही उनके

पास जाता। मैं सोचता, 'वह इन प्रश्नोंके उत्तर क्या देंगे ?' और बापूकी दृष्टिको समझनेका मेरा सतत प्रयत्न होनेके कारण मैं उनके उत्तरकी कल्पना कर सकता था। फिर तो उन उत्तरोंका यथाशक्ति पालन करना ही मेरे लिए शेष रहता।"

---

२. गांधीजीकी शक्तिकी दवा—सत्याग्रह

"गांधीजीके महात्मापनके अलावा उनके विविध मानवगुणों-ने मुझे आकर्षित किया है।"

"उनमें स्वभावतः कितने ही असामान्य सद्‌गुण थे, जिनका विकास बादमें होता गया। और एक ऐसा ही सद्‌गुण है उनकी संकल्प-शक्ति। बापूका संकल्प महान् एवं दृढ़ था। मांटेगू-चेम्सफोर्ड सुधारकी रिपोर्ट जब गांधीजीने पढ़ी तो वह उन्हें सन्तोषजनक जान पड़ी। परन्तु उसके बाद थोड़े ही समयमें रौलट बिल घोषित हुआ। पढ़ते ही गांधीजी बोल उठे, 'यदि इस बिलको सरकार पास कर देगी तो आगामी राजकीय सुधारका कुछ अर्थ ही न रहेगा। ऐसे कायदेसे सुधारकी निष्फलता निश्चित है। और इसमें जनताका घोर अपमान है। इस बिलके विरुद्ध एक बड़ा भारी आन्दोलन देशभरमें उठाना चाहिये। फिर भी सरकार हठपूर्वक यह बिल पास कर दे तो उसके विरुद्ध सत्याग्रह करना चाहिये।'

"परन्तु उस समय गांधीजी बीमार थे। पेचिश तो मिट गयी थी, लेकिन शरीर ऐसा सूख गया था कि किसी भी दवाका प्रभाव नहीं पड़ता था। निर्बलता इतनी थी कि उन्हें बिस्तरपर ही लेटे रहना पड़ता था।

"परन्तु सत्याग्रहका संकल्प करते ही न जाने कहाँसे उनके

शरीरमें शक्ति आने लगी। बादमें तो उन्होंने देशभरमें लम्बे प्रवास किये और देशमें एक जबर्दस्त आन्दोलनकी आग एक छोरसे दूसरे छोरतक सुलगा दी।"

---

३. एक वर्षमें स्वराज्य

"मैंने बार-बार महसूस किया है कि गांधीजीको यकायक ही मालूम हो जाता था कि अमुक प्रसंगपर क्या करना चाहिये और क्या नहीं। अपने कर्तव्यका शुद्ध और सत्य दर्शन उन्हें हो जाता था।

"पंजाबके अत्याचार और खिलाफतके अन्यायको दूर करनेका, और उसका पुनरावर्त्तन न हो इसका उपाय स्वराज्य ही है, और स्वराज्यप्राप्तिके लिए सरकारके सामने अहिंसक असहयोग करना ही एकमात्र उचित साधन है, यह बात उन्हें एक ही क्षणमें सूझी। असहयोगमें क्या-क्या करना चाहिये इसका कार्यक्रम उन्होंने बादमें बुद्धि द्वारा निश्चित किया और सरकारी नौकरी तथा सरकार द्वारा दी गयी उपाधियोंका त्याग, सरकारी अदालतों, पाठशालाओं एवं कालेजोंका बहिष्कार तथा विदेशी कपड़ोंका बहिष्कार; इस प्रकार चतुर्विध बहिष्कारका कार्यक्रम उन्होंने जनताके समक्ष पेश किया। इस बहिष्कार-आन्दोलनको सफल बनानेके लिए उन्होंने पंच द्वारा मध्यस्थी, राष्ट्रीय पाठशालाओंकी स्थापना, चरखेका पुनरुद्धार, हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य, अस्पृश्यता-निवारण इत्यादि रचनात्मक कार्यक्रम भी शुरू किये, और जनतासे अनुरोध किया कि 'इन कार्यक्रमोंके यथार्थ पालनसे ही हम एक वर्षमें स्वराज्य प्राप्त कर सकेंगे।' परन्तु लोगोंने 'पालन'की बात भुला दी और 'एकवर्षमें स्वराज्य'की

बात पकड़ ली। वर्षके अन्तमें जब स्वराज्य प्राप्त नहीं हुआ तो मूल सिद्धान्त जिन्होंने नहीं समझा था उन टीकाकारों को कहनेका मौका मिल गया कि गांधीजीके वचन व्यर्थ हुए।

"फिर भी १९२१ के इस कार्यक्रमसे ही जनतामें नवचेतनाका उदय हुआ। प्रजाने सरकारका अनेक बार सामना किया और जब स्वराज्यरूपी फल परिपक्व हुआ तब वह हमारे अंकमें आ पड़ा।

"किन्तु जबतक जनता रचनात्मक कार्यक्रमका अमल नहीं करेगी, बापूका स्वराज्य तो तबतक बाकी ही है।"

---

४. हिन्द छोड़ोकी आगाही

जब सरकारके विरोधमें कठोर शब्द बोलनेकी किसीमें भी हिम्मत नहीं थी उस समयकी बात है।

१९१६ ई० में बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटीकी स्थापनाके दिन गांधीजीका व्याख्यान था। मंचपर वायसराय और राजे-महराजे बैठे थे। उस समय उन्होंने कहा—

'आप सभी राजे-महाराजे इतने ठाटबाटसे आये हैं, किन्तु मेरा हृदय आपकी आलोचना किये बिना नहीं रह सकता। वह कहता है कि जबतक आप अपने इन हीरे-मोतीके गहनोंका त्याग नहीं करेंगे और इन सब वैभवोंके 'ट्रस्टी' होकर हमारे गरीब देशबन्धुओंके लिए इसे खर्च नहीं करेंगे तबतक देशका उद्धार नहीं होगा। मुझे विश्वास है कि सम्राट् अथवा वायसराय साहब लॉर्ड हार्डिञ्जकी ऐसी इच्छा नहीं है कि उनके प्रति वफादारी दिखानेके लिए हमें अपनी तिजोरीके सभी आभूषण शरीरपर लादकर सभामें आना चाहिये। चाहे जितना भी

जोखिम हो, मैं सम्राट् पंचम जार्जसे संदेशा ले आनेके लिए तैयार हूँ कि वे ऐसे किसी ठाटबाटकी इच्छा नहीं रखते।'

आगे चलकर उन्होंने कहा—

'वायसराय साहब बनारसकी गलियोंमेंसे जा रहे थे तब हम सब चिन्तातुर थे। जगह-जगहपर खुफिया पुलिस रखी गयी थी। यह देखते ही मुझे चोट लगी। मनमें प्रश्न उठा कि आखिर इतना अविश्वास क्यों? लॉर्ड हार्डिञ्ज जैसे आदमीको भी ऐसी जीवित-मृत्युका अनुभव करना पड़े तो क्या मृत्युसे भेंटना इससे अधिक अच्छा नहीं? परन्तु इस जबर्दस्त सल्तनतके प्रतिनिधिको शायद ऐसा न लगे। जीवित मृत्युका अनुभव करते हुए जिन्दगी बिताना इन्हें शायद आवश्यक भी जँचे। परन्तु यह खुफिया पुलिसकी धौंस हमपर क्यों? चाहे हम नाराज हों, चिल्लायें, बुरा मानें, फिर भी हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि आधुनिक भारतने अधीर होकर आतङ्कवादियोंकी सेना पैदा की है।

'अलबत्ता मैं भी साम्राज्यवादका विरोधी हूँ, परन्तु भिन्न प्रकारका। इन अराज्यवादियोंसे मेरी भेंट हो जाय तो मैं उनसे कहना चाहता हूँ कि यदि हमें अपने विजेताओंपर विजय पाना है तो भारतमें तुम्हारे अराज्यवादके लिए स्थान नहीं है, क्योंकि अराज्यवाद तो भयका सूचक है। यदि हमें ईश्वरका डर है और उसपर विश्वास है तो अन्य किसीसे—राजा-महाराजाओंसे या वायसरायोंसे, खुफिया पुलिससे या स्वयं पंचम जार्जसे भी डरनेकी जरूरत नहीं है।'

तत्पश्चात् गम्भीर स्वरमें अपनी मनोदशा प्रकट करते हुए उन्होंने कहा कि,

'हिन्दुस्तानकी मुक्तिके लिए यदि मुझे ऐसा आवश्यक जँचे कि ब्रिटिश प्रजाको यहाँसे चले जाना चाहिये तो उनसे 'चले

जाओ' ऐसा कहनेमें मुझे जरा-सी भी हिचकिचाहट नहीं होगी। और अपनी ऐसी मान्यता जाहिर करनेके लिए अथवा उसको अमलमें लानेके लिए—मैं आशा रखता हूँ कि मुझमें मरनेकी भी हिम्मत है।'

बापूके वाक्तीर छूट रहे थे। सामान्य श्रोताओंको और विद्यार्थियोंको व्याख्यान बहुत पसन्द था। परन्तु होमरूल लीगकी संस्थापिका श्रीमती ऐनी बेसण्टसे यह व्याख्यान सहा नहीं गया। वे खड़ी होकर बोल उठीं, 'मि० गांधी, आपको अपना व्याख्यान समाप्त कर देना चाहिये।'

गांधीजीने प्रमुखकी ओर मुड़कर कहा, 'यदि आपको भी ऐसा लगता हो कि मेरे ऐसे व्याख्यान द्वारा देश एवं साम्राज्यकी कुसेवा हो रही है तो मैं इसी वक्त बैठ जानेके लिए तैयार हूँ। आपकी आज्ञाकी ही देर है।'

प्रमुखने कहा,

'आप अपना उद्देश्य समझाइये।'

बापूने अपना ध्येय समझानेकी कोशिश की, किन्तु थोड़ी ही देरमें मंचपर गड़बड़ होने लगी और श्रीमती ऐनी बेसण्ट तथा थोड़े राजे-महाराजे उठकर चल दिये। इसलिए व्याख्यान भी अधूरा ही रह गया।

स्वयंको जो सत्य मालूम हो उसे निर्भयतासे कहनेका गांधीजीका सद्‌गुण हमें इस दृष्टान्तमें ज्ञात होता है।

तथापि चमत्कारी वस्तु तो यह है कि ४२ में 'भारत छोड़ो'का जो आन्दोलन उन्होंने शुरू किया था उसके बीज उनके हृदयमें ठीक १९१६ से दिखाई पड़ते हैं।

---

५. जाको राखे साइँयाँ····

हिन्दके भविष्यको निश्चित करनेके लिए गांधीजी एकबार इंग्लैण्ड गये थे और वहाँ गोलमेज परिषद्का नाटक खेला गया था।

एक समय वहाँ इतना घनघोर कुहरा छाया हुआ था कि दस कदम दूरकी चीज भी दिखाई नहीं पड़ती थी।

बापूकी मोटर बड़ी तेजीके साथ जा रही थी। सामनेसे एक दूसरी मोटर उतनी ही तेजीसे आ रही थी। दोनों मोटरें जब एक दूसरेके बहुत ही करीब आ गयीं तब दोनोंके शोफरोंको एक दूसरेके अस्तित्वका भान हुआ।

···सामनेवाली मोटर दो ही फीट दूर थी और मृत्यु निश्चित थी। लिखने व पढ़नेमें तो समय लगता है, परन्तु यह सब दो ही क्षणमें हो गया। जो मोटर पहले कल्पनामें भी न थी वहीं आखोंके आगे फूट निकली—और साथमें मृत्युको भी ले आयी।

महादेव भाई देसाई कहते हैं,

'मूर्तिमन्त कालको सामने देखकर मैं थर्रा उठा, किन्तु उसी वक्त बापू तो खिलखिलाकर हँस पड़े।'

मानों ईश्वरने ही दोनों शोफरोंमें कोई अजीब सूझ दे दी, जिससे दुर्घटना होते-होते रह गयी।

थर्राहट, हास्य और रक्षण–ये सब आधे या पौन क्षणमें ही हो गया। बापूने हँसते-हँसते महादेव भाईसे कहा,

'जान पड़ता है, कि ईश्वरको इस शरीरसे और काम लेना है।'

६. ठर्रा मूँग

गांधीजी जैसी संजीवनी शक्तिके निकट आनेपर भी अछूते रह जानेवाले दो व्यक्तियोंकी बात महाराज बड़े चावसे कहते हैं।

महाराज जब सेवाग्राम आते तब गांधीजीके साथ हमेशा प्रातःकाल घूमनेके लिए जाते। दो दिनतक साथ जानेपर महाराज को पता चला कि उनके टहलनेके रास्तेपर एक खेत पड़ता था। यदि गांधीजी उस खेतसे चलें तो घूमनेके स्थानतक बहुत सरलतासे पहुँच जायँ। परन्तु उस खेतके पास आनेपर गांधीजी खेतसे जानेके बजाय खेतकी बगलसे नीचे उतर जाते और बीहड़ जमीनपर चलते हुए खेतका चक्कर लगाकर फिर अपने रास्तेपर आ जाते।

तीसरे दिन खेतके पाससे गुजरते वक्त महाराजने बापूसे कहा,

'बापू! हम इस खेतसे होकर चलें तो?'

'खेतके मालिकने मुझे मना किया है।'

'परन्तु हम फाटक बन्द करते जायँगे।'

बापूने हँसकर कहा,

'महादेव और दूसरोंने उसे बहुत समझाया, किन्तु वह किसी प्रकार मानता नहीं। वह कहता है कि उसके खेतमें मेरा पाँव भी नहीं पड़ना चाहिये।'

पतित-पावन रामचन्द्रजीके जैसे गांधीजीके पाँव जिस खेतमें पड़ेंगे उसमें तो सुनहली फसल पैदा होगी, और यदि किसानोंका वस चले तो खूब उत्साहपूर्वक गांधीजीको अपने खेतमें चलावें। आनन्दसे पागल होनेके बजाय यह किसान इस प्रकारका व्यवहार क्यों करता होगा इसका कारण महाराजको ज्ञात न हो सका।

महाराजने बापूसे कहा, 'मैं जाकर उसे समझाऊँ ?'

'महादेव और दूसरे बड़े-बड़े लोगोंने उसे समझाया, परन्तु वह मानता नहीं। फिर भी तुझे प्रयत्न करना है तो तू भी करके देख ले।'

इस प्रसंगको समाप्त करते हुए महाराज कहते हैं कि—

'उस किसानको गांधीजीसे ऐसी अरुचि थी कि यदि उसका वश चले तो उसके खेतमें बापूके कदम जहाँ-जहाँ पड़ें उस जमीनको खोदकर फेंक दे।'

---

७. 'ग्रामीण' नहीं बन सका हूँ

और दूसरेकी कथा यह है—

ग्रामोद्धारकी दृष्टिसे गांधीजीने सबसे पिछड़ा हुआ और सबसे छोटा गाँव सेवाग्राम पसन्द किया।

एक बार गांधीजी और अन्य आश्रमवासी रास्तेकी सफाई करनेके लिए निकले। रास्ते इतने ऊबड़-खाबड़ थे कि उनकी मरम्मत करनेकी भी आवश्यकता थी। इसलिए उन्होंने झाड़ू और टोकरीके साथ कुदाली तथा फावड़े भी रखे थे।

एक मुहल्लेमें आकर स्वयं-सेवकोंने कुदाली-फावड़ेकी मददसे रास्तेकी मरम्मत शुरू की। सामनेके घरसे एक मनुष्य निकल आया और चिल्लाकर कहने लगा।

'मुझे खुदवाई नहीं करानी है। लो, निकले बड़े सेवा करनेवाले!'

बापूने उसको बहुत समझाया परन्तु, वह टससे मस नहीं हुआ। अन्तमें बापूने कहा,

'इन गड्ढोंमें पानी भरा रहता है इसलिए रोग फैलनेका डर है। यदि हम गड्ढोंको भर दें तो इसमें क्या हर्ज है ?'

उसने कहा, 'इतने बरसोंसे हम यहाँ रहते हैं। रोग फैलनेपर भी हम आजतक जिन्दा रहे हैं या नहीं ?'

और बापूको उस मुहल्लेका काम यों ही छोड़ देना पड़ा।

इस प्रसंगको जब गांधीजीने बारडोलीके स्वराज्य आश्रममें कह सुनाया तब महाराजने कहा,

'बापू, आप जैसेको भी देहातमें काम करते-करते इतना सहन करना पड़ता है तो हम जैसोंकी तो बात ही क्या ?'

तब गांधीजी हँसकर बोले :

'तुम लोगोंको तो गाँववालोंके साथ रहनेका अनुभव है। तुम उनसे मिलना-जुलना भी जानते हो। किन्तु ग्रामवासियोंके साथ ग्रामीण बनकर रहनेकी योग्यता अभी मुझमें नहीं आयी है।'

---

८. चरखेकी लगन

अफ्रिकासे लौटनेपर बापूने देशकी अवनतिके कारणोंकी जाँच शुरू की। उनकी समझमें आ गया कि मैनचेस्टरके शोषण-को मिटानेके लिए फिरसे गाँव-गाँव और घर-घरमें चरखा शुरू हो जाना चाहिये। इस प्रकार जब हिन्दुस्तान ब्रिटेनके लिए दुधार गाय नहीं रह जायगा तो अँग्रेजोंका कोई स्वार्थ यहाँ नहीं रहेगा, और वे हिन्दको छोड़कर चले जायँगे। इसके कारण गांधीजीने जनताको 'सूतके धागेसे स्वराज्य'का यन्त्र दिया।

परन्तु सूतका धागा निकालें कैसे ?

परदेशी कारखानोंके कपड़ोंने हिन्दके कताई-उद्योगको जड़से नष्ट कर दिया था। हाथ-कताईके सूतकी आवश्यकता न रहनेसे सारे देशमें कोई कातनेवाला नहीं रह पाया था। और चरखेका दर्शन भी दुर्लभ था।

जो भी मिले उससे गांधीजी कहते, 'आप जाँच करके कहींसे भी चरखा खोज निकालें।'

श्रीमती गंगाबहन मजमुदारने सर्वप्रथम चरखा खोज निकाला और बिजापुर नामक गाँवमें चरखेके कामका प्रारम्भ किया। बादमें मोहनलाल पण्ड्या तथा महाराज भी चरखेका उपयोग सीख गये। इन सभीने गाँवोंमें चरखेका उपयोग शुरू कर दिया।

इस प्रकार चरखा सीखनेमें महाराज गांधीजीसे भी पहले थे। जब कताई-कार्यमें गांधीजी निष्णात नहीं थे तभी हालोल परिषद्में महाराजने बापूसे कहा, 'चरखा अच्छा नहीं है तो बदल लीजिये न! धागा बारबार टूट जाता है।'

बापूने उत्तर दिया,

'चरखा अच्छा नहीं था? सीधे शब्दोंमें कह दो न कि मुझे ठीक तरहसे कातना नहीं आता।'

इस प्रसंगको याद करते हुए महाराज कहते हैं,

'गांधीजीके पहले मैं कातना सीख गया, मैंने उनके धागेकी टीका भी की; फिर भी बादमें कताईकी कलामें वे मुझसे भी बढ़ गये। मेरा धागा आज भी एक-सा नहीं आता, जब कि गांधीजी तो लगातार अतिशय बारीक सूत कातते थे।'

---

९. कच्चे धान्यका प्रयोग

आवश्यकतासे अधिक शक्तिका संचय भी गांधीजीके मनसे अपरिग्रह व्रतका भंग है।

'जिसने पकानेकी पद्धति शुरू की, उसने अच्छा नहीं किया। पकानेकी यह बला किसलिए? फल तथा धान्य तो वनपक्व ही खाना चाहिये इसमें अधिक मितव्ययिता है।'

एक बार पूज्य बापूजी मद्राससे लौटे । वहाँ उनसे किसीने यह सिद्धान्त बताया कि अनाज तो कच्चा ही खाना चाहिये । इसलिये गुजरातमें आकर वे ऐसा कहने लगे । गांधीजीने यह बात महाराजश्रीसे कही और उनपर इस बातका असर हुआ ।

कुछ समय बाद गांधीजीने निर्णय किया कि कच्चे धान्यका प्रयोग करना चाहिये । उन्होंने यह भी घोषणा की कि यदि किसीको इस प्रयोगमें शामिल होना हो तो वह भी आ जाय ।

महाराजश्रीने सरदार वल्लभ भाईसे कहा, 'सरदार ! बापूके कच्चे धान्यके प्रयोगमें शामिल होनेकी मेरी इच्छा है ।'

सरदारने कहा :

'ढोरकी तरह पागुर करना आता है तो जा सकते हो ।··· परन्तु मैं तुम्हें शामिल नहीं होने दूँगा ।'

प्रसंगवश एक पत्रमें महाराजश्रीने गांधीजीको लिखा : 'आपके प्रयोगमें शामिल होनेकी मेरी इच्छा है, परन्तु सरदार स्वीकृति नहीं देते इसलिए मजबूर हूँ ।'

गांधीजीने सीधे ही सरदारको आज्ञा दी, 'रविशंकरको यहाँ भेज दो ।'

सरदारने महाराजको अनुज्ञा तो दी, परन्तु जाते समय कहा, 'प्रयोग भले ही शुरू करो, परन्तु अन्नको हाथतक न लगाना । उत्तम तो यही है कि सीधे खेतमें चरनेके लिए जाओ ।'

गांधीजी तथा महाराजने प्रयोग शुरू किया । दो-चार दिन तो बापूकी शक्ति बढ़ी, किन्तु साथ-साथ टट्टियोंकी संख्या भी बढ़ी और वजन घटता चला । दोके बाद चार, और ऐसे ही बढ़ते-बढ़ते टट्टियोंकी संख्या पचीस तक पहुँच गयी । इस प्रकार थोड़े दिन बीत गये ।

कच्चा अनाज खानेका मूल विचार गांधीजीका ही था; परन्तु श्री कस्तूरबाने मनमें सोचा—

'ऐसे लोग न जाने कहाँसे आते हैं, और बापूके मनमें अनेक प्रकारकी बेतुकी बातें भर देते हैं। और फिर वे प्रयोगके फंदेमें फँसकर बीमार पड़ जाते हैं। ऐसे-ऐसे साथी मिलते हैं तभी बापूकी प्रयोगवृत्ति उत्तेजित हो उठती है।'

महात्माजीकी तबीयत बिगड़ी इसलिए डॉक्टर हरिभाई देसाई बुलाये गये। उन्होंने गांधीजीसे कहा : 'मैं दवा देता हूँ। उसे आप पी लीजिये। तबीयत अच्छी हो जायगी।'

परन्तु उन दिनों केवल पाँच ही चीजें खानेका बापूका व्रत था। उन्होंने कहा : 'न जाने कितनी चीजें आप दवामें डालेंगे और वे पाँचसे बढ़ जायँगी। इसलिए मैं दवा नहीं पिऊँगा।'

गांधीजीने किसी भी प्रकार बात नहीं मानी। डॉक्टर निराश होकर चले गये। दो दिनके बाद वे वापस आये और कहने लगे :

'यदि मैं फल खानेको कहूँ तो आप लेंगे ?'

'हाँ, फल लूँगा।'

डॉक्टरने बेलका रस पीने, पूरी तरह आराम करनेके और किसीके साथ बात भी न करनेके लिए कहा।

मीराँबहन—कुमारी स्लेड—बापूकी सेवामें रहीं और बातें करके बापूको कोई श्रम न दे इस बातका ध्यान रखने लगीं। एक बार किसी चीजको लेनेके लिए महाराजको बापूके कमरेमें जाना पड़ा। बापू खाटपर बैठे थे और मीराँबहन पीछे बैठी हुई पंखा झल रही थीं।

महाराज तेजीसे उनके कमरेमें दाखिल हुए और बात न हो जाय इसका ध्यान रखते हुए चीज लेकर वापिस लौटने लगे। वे बाहर निकलने ही वाले थे कि पीछेसे आवाज आयी :

'प्रयोग जारी है न ?'

'हाँ', महाराजने कहा।

'वजन कराया ?'

'हाँ ।'

'कितना हुआ ?'

'छ छटाँक कम हुआ ।'

महाराज मजबूरीसे उत्तर देते थे । परन्तु मीराँबहनको यह असह्य होता गया । वह हाथसे जानेके इशारे कर रहीं थीं । परन्तु गांधीजी जब पूछें तब जवाब दिये बिना भी कैसे काम चले ?

'शक्ति कम होती है ?'

'थोड़ी-सी अशक्ति लगती है ।'

'कौन-कौनसे काम करते हो ?'

'सफाई करता हूँ, बरतन माँजता हूँ, पाखानेकी सफाई करता हूँ और बाकी तो कातता हूँ ।'

वार्तालाप हो रहा है और पीछेसे मीराँबहनके हाथ तथा आँखोंके संकेत बढ़ते ही जाते हैं । महाराज भी भागनेका प्रयत्न करते हैं, परन्तु भाग नहीं पाते ।

'ये कहाँ अधिक श्रमके काम हैं ? अच्छा, इतने काम तो होते हैं न ?'

'जी हाँ !'

'तब क्यों कहते हो कि शक्ति घटती है ? तुम्हें तो ज्ञान है न कि आवश्यकतासे अधिक शक्तिका होना विकार पैदा करता है ? अधिक शक्तिका संचय तो करना ही नहीं; और जितनी शक्ति हो उसका तो पूरा उपयोग करना चाहिये ।'

बापूने बोलना आरम्भ कर दिया, फिर महाराज या मीराँ-बहन—कौन रोक सके ? बापूने आगे बोलना जारी रखा :

'ईश्वरने शक्ति दी है तो उसका उपयोग करना ही चाहिये । ईश्वरने जो शक्ति दी है उसका उपयोग न करना परिग्रह है, गुनाह है । हम शक्तिका पूरा उपयोग करें और यदि किसी कामके

लिए अधिक शक्तिकी जरूरत हो तो ईश्वर अपने आप देता है। सारा शरीर परायी—ईश्वरकी धरोहर है, इसलिए उसका उपयोग मरते दमतक करना चाहिये।

'और सुनो। अफ्रिकामें मैंने टालस्टाय आश्रम शुरू किया था। उस आश्रममें हम बहुत ही कमखर्चीसे रहते थे। हम जूतेतक न खरीदते। चमड़ा खरीदते और जूते स्वयं बना लेते थे।

'जोहेन्सबर्ग शहर टालस्टाय फार्मसे इक्कीस मीलकी दूरीपर था। यदि कुछ खरीदनेके लिए शहरमें जानेका प्रसंग आता तो आश्रमवासी पैदल ही जाते। मैं उस समय वकालत करता था। शनिवारको न्यायालय बन्द होते ही मैं वहाँसे चलने लगता और शामको फार्मपर पहुँच जाता। शनैश्चरकी रात तथा इतवारका सारा दिन आश्रममें बिताता। सोमवारके दिन सुबह साढ़े तीन बजे मैं उठता और रोटी तथा नींबूके छिलकेके मुरब्बेका पाथेय लेकर चल पड़ता। चौदह-पन्द्रह मीलकी दूरीपर एक सुन्दर झरना आता था। मैं उसमें स्नान करता और मेरी सब थकावट चली जाती। मैं रोटी तथा मुरब्बेका नाश्ता कर लेता, और आगे बढ़ता। आठ-साढ़े-आठ बजेतक मैं ऑफिसके समयपर जोहेन्सबर्ग पहुँच जाता।'

---

१०. चोरीकी नयी व्याख्या

गांधीजी हमेशा अपने पास एक छोटी-सी पीकदानी और छोटा-सा लोटा रखते थे। सुबह उठकर उस छोटेसे लोटेके पानीसे ही दातून तथा कुल्ला करते, आँखें तथा मुँह धोते और नाकसे पानी भी पीते।

ये सब क्रियाएँ वे अपने लिखनेके मेजपर बैठकर ही करते, परन्तु मेज या आगे-पीछे पड़ी हुई पुस्तकोंपर एक भी छींटा न

पड़ने पाता। हथेलीमें पानी रखते तो उसमेंसे एक बूँद भी नीचे न गिरने पाता। उपयोगमें आया हुआ सब पानी उस पीकदानी-में जमा हो जाता, और उसी पीकदानीसे उनका काम हो जाता।

एक बार श्री मोहनलाल पण्ड्याने उनसे कहा,

'बापू, हमें तो लोटा भरकर पानी चाहिये और आप इतनेसे कैसे काम चला लेते हैं? यहाँ पासमें तो नदी बहती है। आप अधिक पानीसे मुँह साफ करें तो?'

गांधीजीने कहा, 'इतने पानीसे मेरा मुँह ठीक साफ होता है या नहीं? तुम्हें लोटाभर पानी उपयोगके लिए नहीं चाहिये परन्तु बरबाद करनेके लिए चाहिये। हथेलीमें जो पानी तुम लेते हो उसमेंसे कितना नीचे गिर जाता है? मुँहपर तो सिर्फ भीगे हाथ ही फेरते हो।

'नदी क्या हमारे लिए ही है? ईश्वरने नदी केवल मनुष्यके लिए ही नहीं बनायी है। वह तो समस्त सृष्टिके लिए है। हमें तो सिर्फ आवश्यकताके अनुसार ही पानी लेनेका अधिकार है।

'केवल परायी चीज ले लेनेसे ही अस्तेयव्रत भंग होता है। यह बात नहीं। जरूरतसे ज्यादा उपयोग करनेसे भी अस्तेयव्रत भंग होता है।'

---

११. कमखर्ची

एक बार गांधीजीने मोहनलाल पण्ड्याको शौच जानेके बाद मिट्टीका एक बड़ा ढेला लेते हुए देखा। उन्होंने पूछा,

'इतना बड़ा ढेला क्यों?'

'लोटा माँजनेके लिए।' उत्तर मिला।

'इसके लिए इतना बड़ा ढेला? जहाँ वह पड़ा था वहाँसे उसे तुम स्थानभ्रष्ट करते हो और जहाँ लोटा साफ करोगे वहाँ

बिना कारण कचरेका ढेर करोगे। जितनी आवश्यकता हो उतनी ही मिट्टी लेनी चाहिये, उससे अधिक नहीं।'

---

१२. राष्ट्रीय मितव्यय

उस समयकी बात है जब गांधीजी यरवदा जेलमें थे। एक दिन जेल अधिकारीसे बापूने कहा,

'आप अँगीठीके लिए कोयले ज्यादा देते हैं।'

'इससे क्या?' जेलरने हँसकर कहा।

'लेकिन क्यों? मुझे अधिक कोयलेकी आवश्यकता नहीं', गांधीजीने कहा। दूसरे दिन भी वैसा ही हुआ। गांधीजीके कहनेका मर्म उसने समझा ही नहीं था। उसने कहा,

'कोयले ज्यादा हैं तो इसमें आपका क्या नुकसान है? जरूरतके अनुसार उपयोग कीजिये और बाकी रहने दीजिये।'

गांधीजीने कहा, 'किन्तु इसमें पैसे किसके बिगड़ते हैं? देशके न? देशके पैसेमेंसे एक कौड़ीका भी दुरुपयोग नहीं करना चाहिये।'

तीसरे दिन भी कोयले ज्यादा आये। गांधीजीने जेल अधिकारीसे कहा, 'कलसे आप ठीक उचित प्रमाणमें तुलवाकर कोयले भेजेंगे या नहीं? नहीं तो मैं कोयलेका बिलकुल भी उपयोग नहीं करूँगा।'

---

१३. जागृतिकी पराकाष्ठा

सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह, इन पाँचों व्रतोंमें गांधीजी सत्यको ही अधिक महत्त्व देते हैं। सत्य लक्ष्य

है—साध्य है और अन्य चार व्रत उपकरण हैं—साधन हैं। बापूकी सारी साधना सत्यके लिए ही हैं। उनकी अहिंसा भी सत्यके लिए, सत्यके साक्षात्कारके लिए ही थी।

वे हमेशा कहते कि 'सत्यप्रतिज्ञको अपने जीवनके पल-पलमें जाग्रत् रहना चाहिये। उसका एक क्षण भी मूर्च्छावस्थामें न जाना चाहिये। मनुष्य प्रत्येक क्षण अप्रमादकी साधना करे तभी वह असत्यके मार्गसे बच सकता है, अन्यथा नहीं।'

अपने प्रत्येक कार्यमें वे जाग्रत् रहते थे। उनके मेजपरसे एक आलपिन भी किसीने ली हो या आसपास कहीं रख दी हो तो उन्हें बाहरसे आनेपर पता चल जाता। अपने मेजपरकी कलम देखते ही वे पूछते,

'आज किसने कलम ली थी?' और जिसने ली हो उसे वे कहते,

'चीज जहाँसे ली हो उसी स्थानपर, जिस स्थितिमें ली हो उसी स्थितिमें रख देनी चाहिये। जब कलम ली तब तुमने विचार किया था कि बापूने यह कलम फलाँ अमुक जगह, फलाँ अमुक स्थितिमें क्यों रखी है? तुमने तो कलमकी नोक उलटी औंधी रख दी है, जिससे लिखते समय कलमका नोकहीन भाग ही कागजपर पड़े।

'जाग्रत् मनुष्यको ही सत्यके पास पहुँचनेका अधिकार है, दूसरोंको नहीं।'

---

१४. आदर्श निरीक्षण

१९४५ ई०में स्वयंसेवकोंकी एक अभ्यास-कक्षा शुरू की गयी थी और उसके गृहपति थे श्री रविशंकर महाराज।

महाराज बहुत सुन्दरतासे इस वर्गका संचालन करते थे। इससे उन्हें और उनके सहायकोंको कई बार सन्तोष होता। किन्तु गांधीजीकी दृष्टि इतनी तीक्ष्ण और उनके निरीक्षणका स्तर इतना ऊँचा था कि ऐसे हरेक प्रसंगपर वे लोग मन-ही-मन सोचते कि हमें यह सब ठीक लगता है, परन्तु बापूकी कसौटीमें सफल हो तब सन्तोष हो।

एक बार ड्रिल हो रही थी। सभी विद्यार्थी ठीक ढंगसे ड्रिल कर रहे थे। इतनेमें बापू उस ओर गये। दूरसे नजदीक आये तबतक तो वे नतमस्तक ही थे। लोगोंको यही ज्ञान पड़ा कि महात्माजी गहरे विचारमें हैं और कवायदकी ओर उनका ध्यान ही नहीं है।

किन्तु आते ही वे बोले,

'मैं तुम्हारी कवायद नापसन्द करता हूँ। तुम सीधी पंक्तिमें खड़े नहीं हो।'

महाराजने सोचा, 'सभी सीधी पंक्तिमें हैं ही—कहाँ नहीं हैं?' उन्होंने फिरसे देखा तो मालूम हुआ कि पंक्ति बराबर सीधी नहीं थी। थोड़े विद्यार्थी टेढ़े खड़े थे।

सचमुच बापू, इस अभ्यास-कक्षाकी जाँच सूक्ष्म दृष्टि रखकर करते। पाखाने देखने आते तो उनमें कुछ मल तो नहीं रह गया, कहीं कोई दाग तो नहीं है, कहीं मक्खी तो नहीं भिनभिना रही है, सभीकी जाँच झुक-झुक कर और ऐनक ठीक करते हुए करते। उनकी घ्राणेन्द्रिय निकम्मी हो जानेसे पाखानेकी दुर्गन्ध तो उन्हें मालूम नहीं पड़ती थी, किन्तु पाखानेकी स्वच्छता तथा व्यवस्था-में जरा-सी भी कचाई रह जाती तो वे हमें अपने काममें असफल ठहराते।

---

१५. धोनेसे बिगड़े हुए अंगूर

बहुत पुरानी बात है। महाराज जब पुराने ढंगके ब्राह्मण थे उस वक्तकी—१९१८की।

गांधीजी नड़ियादके अनाथाश्रममें पधारे हैं। बड़े उत्साहसे युवक रविशंकर अपने एक साथीको लेकर उनका दर्शन करनेके लिए आये।

गांधीजीके भोजनका समय हुआ। उनके लिए अंगूर तैयार थे। उत्साही रविशंकरने सोचा, चलो इस महान् व्यक्तिका कुछ कार्य तो करें, जिससे पुण्य प्राप्त हो। वे दौड़े और हाथसे घिसकर अंगूर धो लाये।

युवक रविशंकर स्वच्छताके आग्रही थे और फिर यह काम तो महान् व्यक्तिका था। उन्होंने फिरसे एक बार अंगूर धोये और रकाबीमें लाकर गांधीजीके सामने रख दिये। बापूने पूछा,

'क्या अंगूर स्वच्छ हैं?'

'जी हाँ', रविशंकरने कहा।'

'तुम्हें पूरा यकीन है?'

'जी हाँ, मैंने अपने हाथोंसे दो बार धोकर स्वच्छ किये हैं।'

'तुमने धोये हैं या खराब किये हैं?'

रविशंकरकी समझमें यह प्रश्न नहीं आया। वे मुँह ताकने लगे।

गांधीजीने कहा, 'तुमने अंगूर तो ठीक धोये हैं, परन्तु इसके पहले अपने हाथ धोये थे? तुमने तो अपने हाथकी मैल अंगूरोंके ऊपर लगाया।'

इस प्रसंगको समाप्त करते हुए महाराजने कहा, 'गांधीजी स्वच्छताका असाधारण आग्रह रखते थे।'

---

१६. इतनी माथापच्ची क्यों ?

गांधीजी आमके बड़े शौकीन थे। कभी-कभी तो वे दिनमें बीस-पचीस आम खा जाते।

आनन्दके निवासी श्री चिमनलाल दवे बापूके इस शौकसे परिचित थे। एक बार उन्हें समाचार मिला कि बापू आनन्द स्टेशनसे होकर जानेवाले हैं। टोकरीमें आम लेकर वे स्टेशन-पर आये।

गाड़ी रुकनेपर थोड़ी देरके बाद उन्होंने टोकरीसे आम निकाला, धोया और अपने रूमालसे पोंछकर बापूको दिया।

बापूने तुरन्त ही पूछा,

'चिमनलाल, तुमने इस आमको स्वच्छ किया या उसपर अपने रूमालका पसीना लगाया ?'

चिमनलाल गाँधीजीके साथ निःसंकोच बोलते थे। उन्होंने प्रश्न किया,

'बापू, आपके पहले कोई सुधारक हुआ था ?'

'हाँ', बापूने उत्तर दिया।

'एक-दो या अधिक ?'

'कितने ही।'

'तो इतनी माथापच्ची क्यों करते हैं आप ? इतने सुधारक होनेपर भी जगत् तो वैसेके वैसा ही रहा और वैसा ही रहेगा।'

गांधीजीने सस्मित उत्तर दिया :

'उन सुधारकोंका परिश्रम निष्फल न हो इसीलिए मैं इतनी माथापच्ची करता हूँ।'

---

१७. वियोग होता तो ?

१९४१ या ४२ की बात है, जिस वक्त ऐसी अफवाहें उड़ रही थीं कि सरकार जनताके उपयोगकी सभी रेलगाड़ियाँ बन्द करनेवाली है ।

बारडोलीके आश्रममें बापू बैठे हैं और साथियोंके साथ बातचीत हो रही है । बात करते-करते बापूकी नजर यों ही द्वारकी ओर गयी और वे यकायक ही चौंक उठे । दूरसे बा और दो-एक साथी आते हुए दिखाई पड़ रहे थे ।

किन्तु बाको देखकर बापू चौंक क्यों पड़े ?

बात ऐसी थी कि कस्तूरबा किसी कामके लिए मरोली गयी थीं और वहाँ उनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं था । बापूको लगा कि ऐसी तबीयत थी और बा मरोलीसे यहाँतक कैसे आयीं । और ऐसा उन्हें कौन-सा काम होगा ?

बातें बीचमें ही छोड़कर वे तुरन्त ही बाहर आये । बाका हाथ पकड़कर बहुत स्नेहसे वे उनको अन्दर ले आये और उनकी तबीयतके बारेमें पूछने लगे; सेवा-शुश्रूषा की, और ऊपरके खण्डमें ले जाकर बाको उनके बिछौनेमें बहुत प्रेम और हिफाजतसे सुलाया ।

बाके साथियोंमेंसे एक कल्याणजी भाईसे सरदारने कहा:

'कल्याणजी, ऐसी नाजुक परिस्थितिमें बाको क्यों ले आये ?'

'बाने कहा'...कल्याणजी भाई बोलने लगे ।'

'परन्तु तुम्हें तो विचार करना चाहिये था ?'

'लेकिन बा माननेवाली ही कहाँ थीं ? कितनी ही बार हमने समझाया फिर भी वे टससे मस नहीं हुईं ।'

बापूने बासे पूछा,

'ऐसा कौन-सा काम यहाँ रह गया था ?'

'आपका पत्र आया था कि आप बीसवीं तारीखको वर्धा जा रहे हैं। आप सेवाग्राम चले जायें और रेलगाड़ियाँ बन्द हो जायँ तो मैं तो यहाँ रह जाऊँ। और शायद वियोग हो जाय तो?'

'कदाचित् मेरी मृत्यु हो जाय और उस समय आप मेरे पास न रहें तो?'—इस चिन्तामें मैंने ऐसी बीमारीमें भी यात्रा करना पसन्द किया।

---

१८. बेंतका स्वाद

१९१९ की बात है।

देहातमें रहकर चरखेका प्रचार करनेके लिए गांधीजीने कस्तूरबा, मोहनलाल पंड्या तथा रविशंकर महाराजको दहेगाँव तालुकेके बहियल गाँवमें भेजा। तीनोंका प्रचारकार्य चल रहा था कि एक दिन यकायक ही बाने महाराज तथा पंड्याजीसे कहा,

'मुझे तो पहली ही ट्रेनसे अहमदाबाद जाना है।'

रॉलेट कानूनके कारण पंजाबमें बेरहम जुल्म हुआ था। एक आदमी पंजाबसे चलकर दिल्ली आया। उसने पंजाबके अत्याचारोंकी हृदयविदारक कहानी लोगोंको कह सुनायी।

जलियाँवाला बागकी यह करुण कहानी सुनते ही गांधीजीको सत्य वस्तुकी जाँच करनेके लिए वहाँ जानेकी इच्छा हुई। परन्तु भारत सरकारकी आज्ञा थी कि गांधीजी पंजाबमें न जायँ। उस समय देशका वातावरण इतना अशान्त था कि गांधीजी सरकारकी आज्ञाका उल्लंघन करके वातावरणको अधिक अशान्त बनाना नहीं चाहते थे। इसलिए उन्होंने वायसरायके साथ पत्रव्यवहार किया। बहुत समयके बाद उनको पंजाब जानेकी इजाजत मिली।

एक पत्र द्वारा गांधीजीने कस्तूरबाको इन बातोंकी जानकारी

कराते हुए लिखा कि 'मैं अमुक तारीखको पंजाब जानेवाला हूँ ।'

इस पत्रको पढ़कर तुरन्त ही बाने अहमदाबाद जानेका निर्णय किया और महाराज तथा पंड्याजीको अहमदाबाद चलनेके लिए कहा ।

बा, महाराज तथा पंड्याजी अहमदाबाद आये ।

सायं प्रार्थनाके बाद बाने बापूसे हठ किया,

'मुझे भी आपके साथ पंजाब चलना है ।'

गांधीजीने कहा,

'तुम वहाँ क्या करोगी ? तुम्हारा काम तो देहातोंमें है । हम लोगोंने निर्णय किया है देहातोंमें जाकर सेवा करनेका । तुमने उस कामका आरम्भ भी कर दिया है । अब उस कामको अधूरा कैसे रखा जाय ?'

'नहीं, मैं वहाँ नहीं जाऊँगी ।'

'क्यों ?'

'मुझे तो आपके साथ चलना है । देहातमें हमारा निवास-स्थान असुविधाजनक है । वह मेरे लिए अनुकूल नहीं । और सब तो ठीक है, परन्तु नहाने-धोनेका पानी कमरेके अन्दर बने हुए एक कुण्डमें ही इकट्ठा हो जाता है और उस गन्दे पानीको खुद ही बर्तनसे उलीचना पड़ता है । घरके मालिकने पानी बाहर जानेके लिए नल भी नहीं लगाया है ।'

'यह तो अच्छा है । तुम लोग पानीका दुरुपयोग न करो इस लिए ही ऐसा होगा । इससे तो पानीकी बचत करनेकी शिक्षा मिलेगी । मैं समझता हूँ कि वह घर किसी जैनधर्मीका होना चाहिये ।'

पंड्याजी और महाराज हँस पड़े । सचमुच वह जैनीका ही घर था ।

इस बातको हुए दो-तीन दिन बीत गये । कस्तूरबा बापूके

साथ जानेका आग्रह करती थीं और बापू उन्हें गाँवमें जाकर सेवा करनेका आग्रह करते थे। बापूका आग्रह इतना दृढ़ था कि उनसे मिलनेके लिए आयी हुई बहनोंसे यह नहीं सहा गया। उन्होंने बापूसे कहा,

'बापू! आप तो जुल्म कर रहे हैं।'

'क्या मैं पीटता हूँ?'

बहनोंमेंसे एकने कहा,

'इससे तो मार भी अच्छी!'

बापूने बोलनेवाली बहनके सामने देखकर कहा, 'तब तो आपने बेंतका स्वाद जरूर चखा है!'

---

१९. भोजन करके किया गया उपवास

जिस समय श्री अम्बेडकर अपना आडम्बर खड़ा करके हरिजनोंको उभाड़ रहे थे उस समयकी बात है।

एक बार हरिजनोंने गांधीजीसे कहा,

'आपके अत्याचारका सामना करनेके लिए हम आपके ही आँगनमें उपवास-सत्याग्रह करेंगे।'

गांधीजी अम्बेडकरवादियोंके इस सत्याग्रहको अन्याय तथा निर्बलता समझते थे। उन्होंने कहा,

'अच्छी बात है। बड़ी खुशीसे सत्याग्रह कीजिये।'

एक-दो दिनके बाद सत्याग्रहियोंका झुण्ड आश्रमके आँगनमें आ पहुँचा। गांधीजीने सस्मित स्वागत करते हुए कहा,

'मैंने आप सभीको अपनी ओरसे अधिकसे अधिक सुविधाएँ देनेका निर्णय किया है। कहिये, कहाँ पर बैठकर आप लोग सत्याग्रहका आरम्भ करेंगे?'

सत्याग्रहियोंने बाका कमरा दिखाकर कहा,

'हम इस कमरेमें रहकर सत्याग्रह करेंगे।'

गांधीजीने कस्तूरबासे कहा,

'बा, इन भाइयोंको तुम्हारा कमरा पसन्द है, उसे खाली कर दो।'

'फिर मैं कहाँ रहूँगी ?'

'तुम्हारे लिए दूसरी व्यवस्था होगी।'

बाको बहुत दुःख हुआ। उन्होंने विरोध भी किया। परन्तु अपने विरोधियोंको भी यथाशक्ति सुविधाएँ देनेके समर्थक बापूका हृदय इतना दृढ़ था कि अपनी मान्यताकी खातिर जिसे आप स्नेह और आदरके साथ देखते ऐसी पत्नीको भी नाराज करनेमें वे हिचकिचाये नहीं। उन्होंने अपना आग्रह छोड़ा नहीं। आखिरमें मीराँबहन जहाँ रहती थीं उसके पासका कमरा बाके लिए निश्चित किया गया और तभी गांधीजी शान्त हुए। बाका सामान उस कमरेमें रखा गया।

हरिजन भाइयोंने बाके कमरेमें निवास किया। उपवासका आरम्भ हुआ। एक दिन एक उपवास करता। दूसरे दिन वह समाप्त करता और दूसरा सत्याग्रही उपवास करता। तीसरे दिन दूसरा उपवास तोड़ता और तीसरा आरम्भ करता।

इस प्रणालीका स्पष्टीकरण करते हुए सत्याग्रहियोंने गांधीजीसे कहा,

'हम इस प्रकार उपवासके अविच्छिन्न प्रवाहको जारी रखते हुए आपके हृदयका परिवर्तन कर लेंगे और आपके पाखण्डका विनाश कर देंगे।'

बाको अपने कमरेसे निकालकर, अपने 'सात्त्विक उपवासों'से बापूकी 'आसुरी प्रवृत्ति'को गाड़नेका प्रयत्न कर, एक दिन यकायक ही ये सज्जन लोग अपना डेरा उठाकर चल दिये।

---

२०. रोने-पीटने नहीं आया

१९३४ में सत्याग्रह बन्द करनेके बाद महात्माजीने देशके विभिन्न प्रदेशोंमें पर्यटन करना शुरू किया।

एक बार सौराष्ट्रके किसी बड़े शहरमें वे व्याख्यान दे रहे थे। उस समय किसीने ताना मारते हुए कहा, 'सत्याग्रहके आन्दोलनमें विजय प्राप्त की है इसीसे उसका उत्सव मनाने आये होंगे?'

बापूने तुरन्त ही प्रत्युत्तर देते हुए कहा,

'तो क्या मैं रोने-पीटनेके लिए आया हूँ?'

सारी सभा खिलखिलाकर हँस पड़ी।

परन्तु इस उत्तर द्वारा गांधीजीने केवल अपने विरोधीको परास्त ही नहीं किया था, इस उत्तरके पीछे उनके एक सिद्धान्तकी शक्ति छिपी हुई है।

वे मानते हैं कि सत्याग्रहमें पराजय होती ही नहीं। सत्याग्रही जितना सत्याग्रह तथा असत्यसे असहयोग कर सके उतनी विजय तो प्राप्त होती ही है, और स्वराज्य उतना और नजदीक आता है। सच्चे सत्याग्रहीकी किसी भी बातमें पराजयको स्थान ही नहीं।

---

२१. गांधीजीका शिस्तपालन

१९२८ के बारडोली सत्याग्रहके समय सरदार वल्लभभाई पटेलकी आज्ञा थी कि उनके सिवा दूसरा कोई व्यक्ति व्याख्यान न दे।

सत्याग्रह युद्ध प्रारम्भ हुआ। अनपढ़ मनुष्य मनमाने ढंगसे बोलकर बाजी नष्ट कर दे इसलिए सरदारजीने स्वयं गाँव-गाँवमें घूमकर व्याख्यान देना शुरू किया।

एक ओर सरकारने अन्धाधुन्ध दमन शुरू किया तो दूसरी ओर सत्याग्रही स्त्री-पुरुषोंकी दृढ़ता बढ़ने लगी।

परिस्थिति कठिन थी। सरकारके दमनसे हारकर या घबराकर एक भी सत्याग्रही डिग जायगा तो बारडोलीके किसानोंके गौरवमें दाग लग जायगा, ऐसा कठिन काल था। इतनेमें सरकारने आखिरी हुक्म निकाला,

'चौदह दिनकी अवधिमें सभीको लगान भर देना चाहिये। किसान लोग यदि ऐसा नहीं करेंगे तो लगान वसूल करनेके लिए सरकार अपनी समग्र शक्तिका उपयोग करेगी।'

साबरमतीके आश्रममें बैठे हुए बापूको लगा, 'अब तो सत्याग्रहकी विजय निश्चित है।'

और सचमुच चौदह दिनके पहले ही समाधान हुआ।

इस प्रसंगके उत्सवकी एक सभा बारडोलीमें हुई। अहमदाबादसे गांधीजी वहाँ आये। गांधीजीसे प्रवचन करनेके लिए विनती की गयी, किन्तु उन्होंने मंचपरसे इतना ही कहा कि 'मैं आज बोलनेवाला नहीं हूँ, क्योंकि तुम्हारे सरदारकी आज्ञा है कि उनके सिवा कोई दूसरा व्याख्यान न दे। मैं इस आज्ञाको भंग करना नहीं चाहता।'

'अरे, आपको किसने मनाही की है? आप मनपसन्द व्याख्यान दीजिये न!' सरदारने कहा।

व्याख्यान देते हुए गांधीजीने कहा,

'आप ऐसा न समझें कि इस आन्दोलनमें मेरा कुछ भी हिस्सा नहीं। मैं दूर था फिर भी मेरा इसमें हिस्सा है। मैं वहाँ बैठकर ईश्वरसे प्रार्थना करता था कि 'हे ईश्वर! आसुरी संपत्तिको पराजित करनेकी सामर्थ्य सत्याग्रहियोंको प्रदान कर।' और वहाँ बैठे-बैठे ही आन्दोलनका सूक्ष्म निरीक्षण करता था। सरकारकी व्यूह-रचना देखता और हमसे भूल न होने पाये इसका ध्यान

रखता था। सरकारसे भूल होती तब मैं लड़ाईकी अवधिपर रोक लगाता और यह समझता कि उसकी आयु इतनी कम हुई। जब सरकारने चौदह दिनकी अवधि दी तब मुझे लगा कि अब हमारी लड़ाई समाप्त होने जा रही है।

'और ऐसा ही हुआ न ?'

तत्पश्चात् बारडोली-जंगकी विजयके उत्सवमें एक सभा सूरतमें हुई। व्याख्यानका आरम्भ करते हुए महात्माजीने कहा,

'बारडोलीमें सरदारका राज्य था, यहाँ नहीं है, इसलिए मैं यहाँ तो प्रवचन अवश्य करूँगा।'

---

२२. पढ़नेसे पढ़ाना नहीं आता

कौन मनुष्य कितने पानीमें है इसकी परीक्षा गांधीजी तुरन्त ही कर लेते। एक समय गांधीजी खेड़ा जिलेके एक गाँवमें थे। वहाँ एक राष्ट्रीय शालाके शिक्षकने आकर अपनी बड़ाई हाँकना शुरू की। इस बड़ाईको सुनकर गांधीजीने सोचा, इस शिक्षक-की शाला किसी भी अन्य प्रकारकी हो सकती है, पर वह राष्ट्रीय शाला तो नहीं है। राष्ट्रीय शाला या उसके शिक्षकका स्वरूप ऐसा नहीं हो सकता।'

उन्होंने कहा,

'भाई, राष्ट्रीय शालामें पढ़ानेके लिए तो अच्छे शिक्षक होने चाहिये।'

घायल मुखमुद्राके साथ वह जवान शिक्षक तुरन्त ही बोल उठा, 'मैं ट्रेंड हूँ बापू !'

'पढ़ना और पढ़ाना ये दोनों भिन्न-भिन्न चीजें हैं। पढ़े हुए सब पढ़ा नहीं सकते। और बेपढ़ भी पढ़ा सकता है। शिक्षक

होनेकी शक्ति तो नैसर्गिक होती है। वह बाहरसे नहीं आती; वह तो अन्तस्तलसे प्रकट होती है। और शिक्षक होनेके लिए शिक्षक-स्वभाव और सहृदयताके साथ सर्वप्रथम नम्रता भी होनी चाहिये।' बापूने कहा।

उस ट्रेंड शिक्षककी जोरदार जबानको तुरन्त ही लकवा मार गया।

---

२३. बापूकी वणिक्-वृत्ति

सेवाग्रामकी स्थापना हुए अधिक समय नहीं बीता था। एक बार बापूके साथ टहलने जाते समय महाराजकी नजर बार-बार बापूके पाँवकी ओर जाने लगी। उन्होंने देखा कि बापूकी चप्पल इस तरह फटी हुई थी कि उनका पाँव जमीनके साथ घिसता था और उसकी ओर वे बेपरवाह थे।

महाराजने कहा,

'बापू, यह चप्पल सिलवा लेते तो?'

'यहाँ सेवाग्राममें मोची कहाँ?''

'सेवाग्राममें मोची नहीं है तो पासके गाँववाले मोचीके पास ठीक कराइये। यहाँके भिश्तीकी मशक उससे ही ठीक करायी जाती है।'

'परन्तु', बापूने कहा, 'मेरी स्वदेशीकी व्याख्या तो तुम जानते हो?' सबसे निकटवर्ती वस्तु स्वदेशी। जहाँतक हो सके अपने हाथोंसे बनायी चीजोंका उपयोग करना चाहिये। यदि यह न हो सके तो निकटके स्वजनकी बनायी हुई वस्तुका उपयोग करना चाहिये। वह भी न मिले तो अपने मुहल्लेकी चीजका। और वह भी अप्राप्य हो तो गाँवकी चीजका उपयोग करना चाहिये। मैं
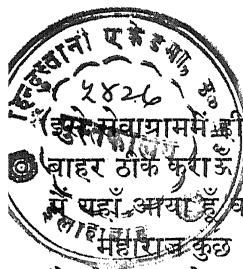
(इसे सेवाग्राममें ही) दुरुस्त करवाना चाहता हूँ। यदि मैं चप्पल बाहर ठीक कराऊँ तो गाँवोंको स्वावलम्बी बनानेका जो व्रत लेकर मैं यहाँ आया हूँ वह भंग हो जायगा !'

महाराज कुछ नहीं बोले। परन्तु इस प्रकार हर रोज बापूके पैरको पीड़ा होती रहे यह महाराजको पसन्द नहीं था। उन्होंने मनमें गाँठ बाँधकर निश्चय किया कि इसके लिए कोई उपाय करना चाहिये।

दूसरे दिन उन्होंने आश्रमवासियोंसे पूछा,

'सेवाग्राममें कोई मोची है ?'

सभीने 'ना' कह दिया।

'किन्तु बापूकी चप्पल तो दुरुस्त होनी चाहिये। तुम लोगोंमेंसे किसीको मोचीका काम नहीं आता ?'

'हाँ, मैं अच्छी तरहसे जानता हूँ। मैं चप्पल ठीक कर दूँगा।' मोहनभाई नामके एक आश्रमनिवासी रजपूत भाईने कहा।

मोहनभाई तो बड़े चतुर कारीगर निकले। उन्होंने चप्पलके खराब भागको काटकर चमड़ेका एक बड़ा टुकड़ा लगा दिया। और इतनी मजबूतीसे लगा दिया कि चप्पल घिस जाने पर भी वह टुकड़ा ज्योंका त्यों बना रहे।

चप्पल तैयार होनेके बाद महाराजने देखा तो नया चप्पल दूसरेसे वजनमें दूना हो गया था। महाराजने महात्माजीसे चप्पल देते समय कहा,

'बापू ! चप्पल ठीक हो गयी है, परन्तु वजनमें बहुत भारी हो गयी है।'

चप्पल हाथमें लेकर देखते हुए बापूने सस्मित भावसे कहा, 'चप्पल भारी हुई इसलिए उसकी कीमत भी बढ़ी। इसमें देनेवालेने भूल की है। उसने माल ज्यादा दिया है; लेनेवालेकी

भूल नहीं। और यह तो स्वदेशी चप्पल है न?'

सेवाग्राममें इस प्रकारके साधन कितने मर्यादित थे इसका वर्णन करते हुए महाराज कहते हैं कि,

'बापू सेवाग्राममें रहनेके लिए गये। उस समय सेवाग्राममें डाकघर भी नहीं था। महादेवभाई वर्धासे डाकघर थैला लेकर आठ मील चलकर सेवाग्राम आते थे। वहाँ दिनभर बैठकर पत्रोंके उत्तर लिखते और शाम होते ही डाकका भारी बंडल लेकर वर्धा पहुँच जाते थे, परन्तु थोड़े समय बाद गांधीजीकी डाकके कारण सेवाग्राममें डाकघर खोला गया। इसके बाद थोड़े समयमें तारघर भी खोला गया। और अन्तमें उन्हींके कारण टेलिफोन भी वहाँ आ गया।'

---

२४. इंग्लैण्डको क्यों चूसें ?

एक बार गांधीजीसे किसीने कहा, 'यदि सब लोग चरखा चलाने लगेंगे तो फिर हमारे देशमें खादीका ढेर लग जायगा।'

सुनकर दूसरे किसीने कहा, 'इसमें हर्ज ही क्या है? हमारे उपयोगके बाद बची हुई खादी परदेशमें बिक्रीके लिए भेजेंगे।'

यह सुनते ही गांधीजी बोल उठे,

'परदेशोंका शोषण हम क्यों करें? यदि वहाँ कच्चे मालकी कमी पड़ेगी तो मैं यहाँसे रुईतक न भेजने दूँ, सिर्फ कपास ही भेजने दूँ। यदि वहाँकी जनताको वस्त्र बनाना न आता हो तो खादी तैयार करनेकी पद्धति सिखानेके लिए यहाँसे स्वयंसेवक भेजूँ। वे जाकर खादीका हुनर सिखा दें। इस प्रकार मदद हो सकती है, किन्तु परदेशोंको लूटा कैसे जायगा? वहाँके पैसे हम कैसे ला सकते हैं?'

उन्होंने आगे कहा,

'यदि मैं इंग्लैण्ड जाकर पैसा कमाने लगूँ तो खादी छोड़कर वहाँका ही कपड़ा पहनूँ, क्योंकि वहाँका अन्न खाकर मुझसे इस देशकी चीजें कैसे इस्तमाल हो सकती हैं ?'

गांधीजीकी इस न्यायवृत्तिका एक विलक्षण परिणाम हुआ है। उन्होंने विदेशी कपड़ोंके बहिष्कार द्वारा मैनचेस्टरके मजदूरोंकी रोटी छीन ली और वहाँ बेकारी बढ़ गयी। इससे वहाँका मजदूरोंका उनपर क्रुद्ध होना स्वाभाविक ही था। महात्माजी जब गोलमेज परिषद्के लिए इंग्लैण्ड गये उस वक्त वे मैनचेस्टर भी गये थे। गांधीजीके कारण वहाँके मजदूरोंको कष्ट सहने पड़े थे इससे गांधीजीके अनुयायियोंका अनुमान था कि शायद ये मजदूर उनका विरोध करेंगे, काली झंडियाँ दिखलायेंगे, वापस लौट जानेके लिए कहेंगे। परन्तु इसके प्रतिकूल मजदूरोंने गांधीजीको मानपत्र प्रदान किया !

गांधीजीके हृदयमें मैनचेस्टरके मजदूरोंके लिए जो प्रेमभाव भरा था और जिस न्यायवृत्तिसे प्रेरित होकर यदि वे विलायतमें रहते तो विलायती कपड़ा ही पहनते, उसीका यह परिणाम था।

---

२५. महात्माजीका समाजवाद

गांधीजी कहा करते थे कि धनवानोंका धन छीनकर मैं समाजवाद स्थापित करना नहीं चाहता। मैं समाजवादी हूँ, किन्तु मैं अनोखी रीतिसे समाजवाद लाना चाहता हूँ। मुझे तो ऐसा करना है कि गरीबोंको पैसेकी आवश्यकता ही न रहे; जिससे धनपतियोंका धन निरर्थक हो जाय। इस प्रकार देहातोंको स्वावलम्बी बनाकर मैं देशमें आर्थिक समानताकी स्थापना करना

चाहता हूँ।

गांधीजीका यह विचार किशोरलाल मशरूवालाकी कही हुई एक कहानी द्वारा अच्छे ढंगसे स्पष्ट होता है।

एक द्वीप था। उसके समुद्रतट-प्रदेशका राज्य एक कोली राजाके हाथमें था।

उस राज्यमें केवल मछलीकी ही उपज होती थी और उसीसे वहाँकी प्रजा अपना गुजारा कर लेती थी और सब तरहसे देश सामान्य था। यहाँ न सोना मिलता था, न चाँदी, न बहुमूल्य वस्त्र या ऐश-आरामकी वस्तुएँ ही; फिर भी प्रजा एक दृष्टिसे सुखी थी।

द्वीपके अन्दरके प्रदेशमें दूसरे किसी राजाका राज्य था। उसके राज्यमें सोने तथा चाँदीकी खानें थीं, धान्यसे लदे हुए खेत थे, घी और दूधके लिए विपुल गोधन था, फल तथा फूलोंसे भरे हुए बागीचे थे। वहाँ बड़े-बड़े प्रासादोंमें लोग रहते थे और सुन्दर वस्त्र पहनकर घूमते थे।

एक बार क्या हुआ कि इस प्रदेशपर दूसरे किसी राजाने हमला किया। वहाँकी ऐश-आरामपसन्द प्रजा सामना न कर सकी। राजाने किनारेवाले राजासे मदद माँगी।

घोर युद्ध हुआ और किनारेवाली बलवान् प्रजाकी मददसे आक्रमक राजाको पराजित किया गया। 'कोली राजाने मेरे प्रदेशको बचाया' यह विचार करके खेतीवाले प्रदेशके राजाने उसे अपने यहाँ बुलाकर स्वागत किया। उसने कोली राजासे कहा, 'मैं उपकारका बदला किस प्रकार दूँ? हमारे राज्यमें जो स्वर्ण निकलता है उसमेंसे थोड़ा हम आपके राज्यमें हर साल भेजते रहेंगे।'

इस प्रकार उस राजाने बहुत आग्रह किया, किन्तु कोली राजाने विनयपूर्वक अस्वीकार किया।

भूपतिने कहा,

'तो हर वर्ष थोड़ी चाँदी स्वीकार करें ।'

किनारेवाले राजाने उसको भी अस्वीकार किया ।

'तो हमारा धान्य स्वीकार कीजिये ।'

कोली राजाने कहा, 'समुद्रदेवता हमारे लिए काफी मछलियाँ देते हैं । खाने-पीनेकी तो हमें कोई कमी नहीं ।'

भूपतिने कहा, 'कुछ नहीं तो हमारे फलफूलोंको तो अवश्य स्वीकार कीजिये ।'

कोली राजाने उसको भी अस्वीकृत कर दिया ।

भूपतिने आग्रहवश कहा, 'कुछ तो लीजिये ही राजन् ।'

'आपका इतना आग्रह है तो मेरे हरेक प्रजाजनके लिए प्रति वर्ष दो सीपियाँ भेजना । हमारे देशकी स्त्रियोंको सीपियोंके गहनोंका बहुत शौक है ।'

भूपतिने कहा, 'यह क्या माँगा राजन् ? यह तो देंगे ही । दूसरी कोई मूल्यवान् वस्तु लीजिये ।'

'नहीं, इतना ही पर्याप्त है ।' कोली राजाने कहा ।

अपने राज्यमें जाकर कोली राजाने ढिंढोरा पिटवाया कि 'कोई भी प्रजाजन पड़ोसी राज्यमें एक भी सीपी दे या बेचे नहीं । यदि किसीने सीपी दी या बेची तो उसे मृत्युदण्डकी सजा मिलेगी ।'

उस भूपतिके राज्यमें सीपियाँ होती ही न थीं । इससे एक-दो सालमें भूपतिका सीपियोंका संग्रह खत्म हो गया ।

अब किनारेके राज्यसे सीपियाँ खरीदनी ही पड़ीं । कोली राजाने सीपियाँ देनेपर जो प्रतिबन्ध किया था उसे जारी रखा और बेचनेका प्रतिबन्ध उठा लिया और अपनी प्रजासे कहा, 'उस देशमें सीपियाँ बेचकर तुम अपना मनपसन्द भाव ले सकोगे; और उस धन द्वारा उनके पाससे फल, धान्य, सुवर्ण, चाँदी इत्यादि सभी वस्तुएँ खरीद सकोगे ।' अब सीपियोंका भाव दिन-

प्रति-दिन बढ़ने लगा। और इस प्रकार मध्य देशकी समृद्धि किनारेके प्रदेशमें आने लगी।

थोड़े वर्ष बीत जानेके बाद मध्यदेशके राजाकी मृत्यु हुई। उसके बाद उसका पुत्र राजा हुआ। उसने कोली राजासे कहा, 'हमारा पुराना समझौता हमें मंजूर नहीं है। हम नया समझौता करेंगे।'

दोनों राजा चर्चाके लिए इकट्ठे हुए। आखिर ऐसा समझौता हुआ कि मध्यदेश किनारेवाले प्रदेशको प्रति वर्ष चार सीपियाँ दे।

इन चार सीपियोंके लिए भी किनारेवाली प्रजा बहुत द्रव्य लूटती।

इस कहानीमें गांधीजीके उपदेशका सारसत्य—स्वदेशीकी महिमा और विदेशीका दुष्परिणाम सुनिहित है।

---

२६. कपड़े चुभते हैं

जब तुम जेलमें हो तब जेलके सभी नियमों एवं अनुशासनका पालन करना चाहिये ऐसा गांधीजीका नियम था। इससे १९२४ में उनकी शल्यक्रियाके और बादके दिनोंमें अस्पतालमें विदेशी कपड़े पहनाये गये तो उन्होंने यह सहन कर लिया।

इतनेमें यकायक ही उनको छोड़ देनेका हुक्म आया। बापू तुरन्त ही साथियोंको कहने लगे,

'खादी लाओ, खादीके कपड़े लाओ। ये कपड़े तो शरीरमें चुभते हैं।'

फिर तो खादीके कपड़े पहनकर ही बापू जेलके बाहर आये।

---

२७. वज्रसे भी कठोर

एक बार डॉक्टरने कस्तूरबाको नमक खानेकी मनाही की। बाको यह परहेज बहुत कठिन लगा।

महात्माजीने कहा,

'नमक न खाना कौन-सी बड़ी बात है ?'

'बोलना तो आसान है, किन्तु डॉक्टरने यदि आपको ऐसी मनाही की होती तो मालूम हो जाता।'

थोड़ी देरके बाद गांधीजीने कहा,

'अच्छा, तो आजसे मैंने भी नमक छोड़ा।'

कस्तूरबाने बहुत विनतियाँ कीं, परन्तु गांधीजीने अपनी टेक नहीं छोड़ी। बाको यह चोट असह्य हो गयी।

बा और बापू दोनों नमक नहीं खाते थे, यह देखकर बालक देवदासको भी नमक छोड़नेकी इच्छा हुई। गांधीजीने उससे पन्द्रह दिनतक नमक न खानेकी प्रतिज्ञा करवायी।

एक बार सब भोजनके लिए बैठे थे। सबकी थालीमें नमकीन स्वादिष्ठ पदार्थ परोसे गये थे। गांधीजी अपने सामनेकी थालीमें बिना नमककी चीज परोसनेकी राह देख रहे थे। देवदास बापूके पास ही बैठा था। नमकीन पदार्थ देखते ही देवदासके मुँहमें पानी आ गया। 'मुझे यह खाना है' कहकर उसने पासकी थालीमें हाथ डाला।

बालक देवदासने मुँहमें रखनेके लिए ज्यों ही कुछ उठाना चाहा, त्यों ही गांधीजीने अपने हाथोंसे उसके हाथ थाम लिये।

गांधीजीका यह कार्य कठोर लगनेपर भी कठोर न था। प्रतिज्ञा-पालनके विषयमें वे स्वभावतः आग्रही थे। प्रतिज्ञाभंगसे उन्हें बहुत दुःख होता था। वे तो यह मानते थे कि प्रतिज्ञा-भंग करनेसे मानवता भंग हो जाती है। चूँकि देवदासने प्रतिज्ञा उनके

सामने की थी इसलिए उसे प्रतिज्ञा-भंगसे बचाना वे अपना विशेष धर्म समझते थे।

देवदासको मना करते हुए उन्होंने कहा, 'तुम भी नहीं खाओगे और मैं भी नहीं खाऊँगा।' देवदासने बहुत हठ किया, परन्तु गांधीजीने उसके हाथ नहीं छोड़े। थोड़ी देरके बाद देवदास रो पड़ा और बोला, 'मैं बिना नमककी चीजें ही खाऊँगा।'

आते हुए आँसुओंको रोकते हुए पिताने पुत्रको अपनी गोदमें खींच लिया और 'मेरे लाल, मेरे बच्चे' ये शब्द बोलते-बोलते गलेसे लगा लिया।

वज्रसे भी कठोर बापू फूलसे भी कोमल थे।

---

२८. फूलसे भी कोमल

सचमुच वज्रसे भी कठोर बापू फूलसे भी कोमल थे।

एक बार ज्यादा श्रमके कारण उनका रक्तचाप (ब्लडप्रेसर) अधिक हो गया। सरदार उनको आरामके लिए गुजरात विद्यापीठमें ले आये। कहीं उनका स्वास्थ्य बिगड़ न जाय इसलिए सरदारने बिलकुल एकान्तमें रखनेका निर्णय करके बापूका बिछौना सबसे ऊपरकी मंजिलमें बिछवाया और ऐसा प्रबन्ध किया कि जिससे कोई उनके पास जा न सके।

वर्धाके आश्रममें चितलेजी नामके एक सज्जन उस समय रहते थे। नन्हीसी देह और ठीक अड़तालीस सेर वजन।

गांधीजी साबरमती आये, उसके बाद थोड़े ही दिनमें चितलेजी भी वर्धासे साबरमती आये। उन्होंने सरदारसे कहा,

'मैं बापूसे मिलना चाहता हूँ।'

सरदारने स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया कि 'यह तो सम्भव नहीं

हो सकेगा।'

दूसरे दिन चितलेजीने फिर आग्रहपूर्ण विनतियाँ कीं, परन्तु व्यर्थ !

दिन-प्रति-दिन चितलेजीका आग्रह बढ़ता गया।

एक दिन सरदारने बापूसे पूछा, 'इस पागलको ऐसा कौन-सा काम आ पड़ा है कि हररोज आपसे मिलनेके लिए हठ करता है?'

'सरदार! किसीको भी न आने देना, किन्तु चितलेजीको आने दो तो अच्छा हो।'

कहते-कहते गांधीजीका स्वर इतना दीन हो गया कि सरदारका हृदय पिघल गया। उनको लगा कि चितलेजीके आते ही मिलनेकी अनुमति दे दूँ।

परन्तु सरदारका भाग्य अनुकूल नहीं था।

उस दिन चितलेजी आये नहीं। दूसरे दिन भी वे दिखाई नहीं पड़े।

सरदारने मनमें सोचा कि आश्रममें जाकर नरहरि पारिखसे मिलूँ। वह चितलेजीको भेजेगा। चितलेजीका नाम बतलाये बिना ही सरदारने रविशंकर महाराजसे कहा,

'चलिये, नरहरि पारिखके समाचार मालूम करें।'

दोनों श्री नरहरि पारिखके यहाँ गये। वहाँ जाकर सरदारने चितलेजीकी तलाश की, परन्तु वे मिले नहीं। सामान्य बातचीतमें ही थोड़ा समय बिताया, फिर भी चितलेजी नहीं आये। निराश होकर सरदार लक्ष्मीदास आशरके यहाँ गये। वहाँ उन्होंने सभीका स्वास्थ्य-समाचार पूछा; किन्तु जिनके लिए वे आये थे वे चितलेजी यहाँ भी नहीं थे। अन्तमें हारकर सरदारने महाराजसे कहा,

'चलिये रविशंकर, अब उठें।'

सरदार विद्यापीठ जानेके लिए निकले। इतनेमें सामनेसे

चितलेजी आते हुए दिखाई दिये। वे नजदीक आये।

सरदारने सोचा कि चितलेजी पूछेंगे तो कहूँगा। परन्तु तीन-चार बार ना कहा था इसलिए चितलेजीने आज उस बातका जिक्र किया ही नहीं। केवल नमस्कार ही किया। आखिर सरदारने ही कहा,

'चितलेजी, आपको बापूसे मिलना ही है?'

चितलेजीने दीनमुखसे कहा,

'मिलने दो तो बड़ा उपकार होगा।'

सरदारने कहा,

'परन्तु एकाध मिनटसे ज्यादा बातचीत आप नहीं कर सकेंगे। तुरन्त ही नीचे उतर जाना होगा।'

चितलेजीने खुश होकर कहा, 'ठीक है।'

× × ×

शाम ढलती जा रही थी।

गांधीजी छतपर टहल रहे थे।

सरदारने चितलेजीको छतपर भेजा और वे सीढ़ीके आगे चौकीदारी करने बैठ गये। किन्तु उनसे रहा नहीं गया। वे बातचीत जाननेके लिए आतुर हो उठे और छतपर गये।

ऊपर जाते ही वे स्तंभित-से रह गये।

थोड़ी दूरीपर बापू खड़े थे। चितलेजीने उनके पाँव पकड़े थे और उनके आँसू गांधीजीके पाँव भिगो रहे थे। बापूकी आँखोंके आँसू उसमें मिल रहे थे।

वह था केवल दोनोंका प्रेममिलन!

---

२९. महादेव भाई—बापूके मजदूर

१९२८ में आश्रमके प्राण समान श्री मगनलाल गांधीकी मृत्यु हुई। आश्रममें अलग रहनेवाले कुटुम्बियोंकी संख्या क्रमशः बढ़ती जा रही थी। मगनलाल भाईको अनेकों बार ऐसा लगता था कि एकतामें तथा आश्रमके तपोमय वातावरणमें कुछ न्यूनता आ रही है, किन्तु गांधीजी उनको सहनशील बननेकी सलाह दिया करते थे। मगनलाल भाईकी मृत्युके बाद स्वयं बापूने भी सोचा कि मगनलाल भाईकी इच्छाके अनुसार परिवर्तन करनेका समय आ पहुँचा है। गांधीजीने सभी आश्रमवासियोंको एकत्र किया और नीचेकी व्यवस्था दी—

१. आश्रममें रहनेवाले सभी लोगोंके लिए ब्रह्मचर्य सहित सभी व्रत तथा नियमोंका पालन करना अनिवार्य होगा।
२. आश्रममें एक संयुक्त रसोईघर रखा जाय।
३. आश्रममें कुछ कुटुम्ब अलग-अलग रहते हैं इसके बजाय बहनें बहनोंके साथ तथा भाई भाइयोंके साथ रहें और जो बच्चे बहुत छोटे हों वे अपनी माताओं के साथ रहें। अन्य बच्चोंके लिए एक बाल-विभाग रखा जाय और उसका उत्तर-दायित्व आश्रम-निवासी सभी भाई-बहनोंपर रहे।

पहले दो परिवर्तनसे लगभग सभी आश्रम निवासी सहमत हो गये। जो एक-दो कुटुम्ब इसके लिए सहमत नहीं हो सके उन्होंने आश्रम छोड़ दिया। परन्तु तीसरे परिवर्तनसे सहमत होनेके लिए कई कुटुम्बी प्रस्तुत नहीं हुए। उन्होंने बापूको पत्रमें लिखा कि 'यह परिवर्तन उनकी शक्तिके बाहर है।' महादेव भाई तथा नरहरि भाईने भी संयुक्त पत्रमें अपनी परिस्थिति समझकर इस परिवर्तनका विरोध किया। पत्र देते समय महादेव भाईने बापूसे पूछा,

'जो इन नियमोंका पालन न कर सकें उनको क्या करना चाहिये ?'

'वे आश्रममें नहीं रह सकेंगे। उनको आश्रम छोड़ना चाहिये।'

दूसरे दिन महादेव भाईने महात्माजीसे पूछा,

'आश्रममें ये मजदूर आते हैं उन्हें इन नियमोंका पालन करना चाहिये या नहीं ?'

'नहीं।'

'क्यों ?'

'वे आश्रमके बाहरके मनुष्य हैं—सुबह आते हैं और शामको काम पूरा होते ही चले जाते हैं। वे आश्रमवासी नहीं हैं।'

'तब मैं आपका और आश्रमका एक मजदूर ही हूँ न ? मजदूरी करनेमें मुझे आनन्द प्राप्त होता है। मैंने मजदूरी को ही अपने जीवनका ध्येय बना रखा है। मैं भी आश्रमके बाहर रहूँ, यहाँ आकर आपका तथा आश्रमका काम करूँ और काम खत्म होते ही वापस चला जाऊँ तो कोई हर्ज होगा ?'

गांधीजीने हँसकर कहा,

'महादेव ! तेरे बिना मेरा काम और मेरे बिना तेरा काम नहीं चल सकता। अच्छा, ऐसा ही करना।' तत्पश्चात् उन्होंने थोड़े उदास स्वरमें कहा,

'तू तो मेरा दाहिना हाथ है। उसे पक्षाघात हो जाय फिर क्या रह जायगा ?'

परन्तु उस हाथको पक्षाघात हो, ऐसा समय ही न आया। पुराने कुटुम्बोंको अपवादमें छोड़कर बापूने उन्हें अलग रहनेकी मंजूरी दी; हालाँकि पहले दो नियम तो सभीने स्वीकार किये थे। आश्रमवासी और अन्य—इस प्रकारका भेद निकल गया,

आश्रमका एक संयुक्त रसोईघर बन गया और नये निवासियोंके लिए तीसरा नियम भी जारी कर दिया गया।

---

३०. मैं ब्रह्मचारी कहाँका ?

वर्षों पहलेकी बात है।

महात्माजीको मानपत्र देनेके लिए भादरण तालुकेमें एक सभा की गयी थी।

मानपत्रके लेखकने महाकवि नानालालका नैष्ठिक ब्रह्मचर्य प्रतिपादक 'जया और जयन्त' नाटक पढ़ा होगा इसलिए या जाने क्यों, मानपत्रमें गांधीजीको नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहा गया था।

मानपत्रका उत्तर देते हुए बापूने कहा,

'इस मानपत्रमें आपने मुझे नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहा है। परन्तु मेरे तो चार पुत्र हैं। नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहाँका ? यदि मैं नैष्ठिक ब्रह्मचारी होता तो मुझे यह आँतका रोग किस प्रकार होता ? और मैं यदि नैष्ठिक ब्रह्मचारी होता तो मुझे स्वराज्य प्राप्त करनेके लिए इतनी दौड़-धूप क्यों करनी पड़ती ? तो फिर एक ही जगहपर स्थिर होकर सारे सत्याग्रहको संचालित न करता ?'

बापूके मनमें ब्रह्मचर्यका माहात्म्य इतना बड़ा था।

---

३१. बापूका अभिमान

मैंने महाराजसे पूछा,

'गांधीजी अभिमानी थे ?'

महाराजने कहा,

'अभिमानके दो मुख हैं। एकका नाम है स्वाभिमान और दूसरेका गर्व। स्वाभिमान हरेक मनुष्यमें होना चाहिये। यदि वह न हुआ तो वह कुछ नहीं कर सकेगा। स्वाभिमान ऊपर उठाता है और गर्व नीचे गिराता है। गांधीजीमें स्वाभिमान जरूर था।

'बापू कई बार कहते,

'भुलाया हुआ चरखा मेरे हाथोंसे पुनः जीवित हुआ है।'

'हिन्दुस्तानको स्वतन्त्र करनेके लिए ईश्वरने मुझे जन्म दिया है।'

'मैं सत्याग्रही हूँ।'

'मैं शिक्षक हूँ।'

'गांधीजी इस प्रकार अपनी सिद्धियों एवम् शक्तियोंको पहचानते थे। परन्तु झूठा अभिमान-मिथ्याभिमान—अहंकारका उनमें लेशमात्र भी न था।'

---

३२. लिबरलोंकी नीति

महात्माजीने सविनय कानून भंगका आन्दोलन बन्द कर दिया। उसके बाद एक बार सप्रूसाहब उनसे मिलनेके लिए सेवाग्राम आये। महात्माजीने कहा,

'आप लिबरल लोग एक काम तो करें। आप इतना तो मानते हैं न कि अँग्रेजोंको हिन्दुस्तानको कमसे कम कुछ-न-कुछ तो देना ही चाहिये? तो फिर अँग्रेजोंके पास माँग लीजिये कि हिन्दुस्तानको कमसे कम ये वस्तुएँ दे दो। यदि वे आपको इतना भी देनेके लिए राजी न हों तो उनके साथ लड़ना शुरू करो।'

सप्रसाहबने कहा,

'हमसे लड़ा तो नहीं जायगा।'

'तो आपका माँगना मिथ्या ही है।' बापूने कहा।

---

३३. मैं तो अँग्रेजोंसे खुश हूँ

बापूके विविध सद्गुणोंमेंसे एक था सच्ची कदरदानीका। वे कहते कि 'मैं अँग्रेजोंसे यों तो खुश हूँ। उस प्रजामें साहस, मर्दानगी, व्यवस्था-शक्ति, नियमबद्धता इत्यादि अनेक दुष्प्राप्य सद्गुण भरे हुए हैं। उनमें एक ही अवगुण है कि वे मित्रको लूटते हैं। उस अवगुणको भुलानेमें ही उनका तथा हमारे राष्ट्रका कल्याण है। इस प्रकार हमारे कल्याणमें उनका भी कल्याण समाया हुआ है। हमारी स्वातन्त्र्यसिद्धिमें उन्हें उनकी मानवता वापस मिलनेवाली है और हिन्दकी मैत्री भी। और इसीलिए मैं उनके साथ लड़ रहा हूँ। मैं अँग्रेजोंको विदा करना नहीं चाहता, परन्तु मुझे उनकी सत्ताको निकालना है। मेरी इतनी ही ख्वाहिश है कि वे अपना भुलाया हुआ सद्गुण वापस प्राप्त कर लें। मैं तो उनको मित्र बनाना चाहता हूँ। उनके इस अवगुणके नाशके पश्चात् मैत्रीके लिए हाथ बढ़ानेमें मुझे जितना आनन्द होगा उतना आनन्द तो तैतीस कोटिमेंसे और किसीको शायद ही होगा।

---

३४. चीलके पीछे चील

वस्तुको नूतनताकी दृष्टिसे देखनेकी ऐसी विलक्षण शक्ति गांधीजीमें थी, जो दूसरोंकी कल्पनासे भी परे है।

जब 'भारत छोड़ो'की चुनौती उन्होंने दी उस समय वे कहते थे कि 'अँग्रेजोंके गलेसे भारत चिपट गया है और उसके रक्षणका

भार उन्हें इतना व्यस्त रखता है कि वे सुगमतासे विश्वयुद्धमें लड़ नहीं सकते। जब एक चीलके मुखमें माँसका टुकड़ा होता है तब दूसरी उसपर झपटती है। परन्तु यदि वह टुकड़ा फेंक दे तो वह भयमुक्त हो जाती है। इन अँग्रेजोंका भी ऐसा ही हाल है। हिन्दुस्तान रूपी बड़ा मांसका टुकड़ा उनके मुँहमें है। और इसी लिए जर्मनी उनपर आक्रमण करता है। यह आक्रमण इंग्लैण्ड लेनेके लिए नहीं, पर उसके संस्थान लेनेके लिए है। यदि स्वेच्छा पूर्वक इंग्लैण्ड अपने संस्थानोंको स्वतन्त्र कर दे तो यह महायुद्ध समाप्त हो जाय।'

---

३५. चरखे जैसा जड़

महात्माजीका ऐसा दृढ़ आग्रह था कि वह कोई भी बात पूरी तरहसे समझनेके बाद ही उसे अमलमें लाते थे।

उदाहरणार्थ, चरखेका शास्त्र समझे बिना चरखा कातना नहीं चाहिये। चरखा स्वावलम्बन और अभयका दाता है यह समझनेके पश्चात् ही चरखा अपनाना चाहिये।

बिना समझे ही जो आदमी चरखा कातता है उसके लिए बापू कहते थे कि, 'बिना समझे जो चरखेका उपयोग करेगा वह चरखे जैसा ही जड़ होगा।'

---

३६. 'मेरी पत्नी विधवा हो'

दक्षिण अफ्रिकाके सत्याग्रहके समयकी बात है। सत्याग्रहके दरमियान जालिमके जुल्मको एक बलिदान दिया गया। उसकी गोली सत्याग्रहियोंमेंसे एकको बेधती हुई चली गयी।

गांधीजीने देखा कि उस सत्याग्रही मजदूरकी स्त्री अत्यधिक विलाप करते हुए आँसुओंकी झड़ी बरसा रही थी। गांधीजीने उससे कहा,

'बहन ! यह प्रसंग दुःखका नहीं, आनन्दका है। स्वाधिकार प्राप्त करनेके लिए मरना या पतिको मरने देना इससे श्रेष्ठ और क्या हो सकता है ? मैं तो चाहता हूँ कि मेरी स्त्रीकी दशा भी तेरी जैसी ही हो।'

यह सुनते ही उस अनाथ स्त्रीके आँसू तुरन्त रुक गये।

---

३७. रामायण समझे हो ?

रौलट सत्याग्रहके दिनोंमें गांधीजीको पंजाब जाते समय रास्तेमें पकड़ लिया गया। यह समाचार जाहिर होते ही जनतामें हाहाकार मच गया। बम्बई, अहमदाबाद इत्यादि स्थलोंमें उपद्रव भी हुए।

अहमदाबादमें तो इस उपद्रवने मर्यादा तोड़ दी। जनताने एक सार्जंटका खून कर दिया। जगह-जगह आग लगायी गयी। एक-दो दिनके लिए तो अहमदाबादका सारा पुलिसतन्त्र अस्त-व्यस्त हो गया और आतंकियोंका राज्य फैल गया। एक ओर जनताको शान्त करनेके लिए देश-सेवक जनतामें प्रचार कर रहे थे और दूसरी ओर कमिश्नरने बम्बई सरकारको सन्देशा भेजा था कि उपद्रव बन्द करनेके लिए सशस्त्र दल भेजा जाय।

मिलिटरी अहमदाबाद आयेगी तो जलियाँवाले बागकी तरह हजारोंको परलोक पहुँचा देगी ऐसी खबर नड़ियाद पहुँची। मिलिटरीको रोकनेके लिए नड़ियादके थोड़े साहसी युवकोंने अपनी जान खतरेमें डालकर भी नड़ियादके पासकी रेलवे लाइन उखाड़कर फेंक दी।

इतनेमें अखबारोंमें ऐसा समाचार छपा कि गांधीजीको बम्बई लाकर छोड़ दिया गया है। स्व० मोहनलाल पंड्या तथा महाराजने इस समाचार द्वारा नड़ियादकी प्रजाको शान्त करनेका प्रयास किया, परन्तु व्यर्थ। जिस दिन रेलवे-लाइन उखाड़ी गयी उसके दूसरे दिन यदि 'गांधीजी अहमदाबाद आ जायँ तो शायद उनको देखकर जनता शान्त हो जाय'—यह सोचकर महाराजने नड़ियादसे बम्बईकी गाड़ी पकड़ी।

जब महाराज बम्बई पहुँचे तो खबर मिली कि अहमदाबाद-की खबर सुनते ही गांधीजी अहमदाबाद जानेके लिए रवाना हो गये हैं।

लौटती ट्रेनसे महाराज वापस लौटे। बम्बईसे रवाना की हुई मिलिटरीको रेलवे लाइनकी मरम्मत हो जानेतक रुकना पड़ा था। जब महाराज आनन्द पहुँचे तब लाइनकी मरम्मत हो चुकी थी। मिलिटरी रवाना हो गयी थी। बादकी रेलमें गांधीजी भी अहमदाबाद जानेके लिए चल पड़े थे। इसके बादकी गाड़ीमें महाराजने भी अहमदाबादका रास्ता लिया।

गांधीजी अहमदाबाद पहुँचे। जनताके अत्याचारके प्रायश्चित्त-स्वरूप उन्होंने तीन दिनतक उपवास करनेका निर्णय किया। निर्णय, सुनकर महाराजने महात्माजीसे कहा,

'बापू! जनताने इसमें क्या भूल की है? कैकेयीने रामचन्द्रजीको वनवास दिया तब सारी अयोध्या क्या उलट नहीं पड़ी थी?'

गांधीजीने कहा,

'रामायण समझे हो या यों ही बकवाद करते हो? रविशंकर, मुझे सरकारने पकड़ा इतनेसे ही क्या मनुष्यका खून करना चाहिये और आग लगानी चाहिये? रामचन्द्रजीको वनवास मिला तब प्रजाने कैकेयीका खून नहीं किया था; अयोध्या नहीं

सुलगायी थी । प्रजा तो रामचन्द्रजीके पीछे-पीछे जाने लगी थी । यदि मेरे जेलमें जानेसे इतना दुःख हुआ था तो मेरे पीछे-पीछे जेलमें आना था । परन्तु इस तरह हिंसा और हत्याकाण्ड करनेकी क्या जरूरत थी ?'

थोड़े दिनके बाद परिस्थिति ठीक हुई । इसके बाद गांधीजीने महाराजसे कहा, 'रविशंकर, उस दिनकी मेरी बातका तात्पर्य समझमें आया था ? जब हिन्दका पुण्य अँग्रेजोंके पुण्यसे अधिक होगा तभी स्वराज्य-प्राप्ति होगी ।'

आगे उन्होंने कहा, 'यह तो अच्छा हुआ कि रेलवेलाइन उखाड़नेसे किसी का नुकसान नहीं हुआ । यदि नुकसान हुआ होता तो हमारे पापमें उतनी वृद्धि होती और स्वराज्य उतनी देरीसे प्राप्त होता ।'

---

३८. केवल वेशपरिवर्तन किया है

संन्यासी वस्त्रोंका गेरुआ रंग अर्थ-सूचक है ।

जब चूल्हा सुलगाया जाता है तब उसमें डाली गयी लकड़ियोंमें पानी और दूसरे पदार्थ भी होते हैं । जबतक वे जलती हैं तबतक उसमेंसे धुआँ भी निकलता है, ज्वाला भी निकलती है और उसका रंग भूरा, पीला व लाल हुआ करता है ।

परन्तु जब ये विजातीय तत्त्व जलकर खाक हो जाते हैं तब ज्वाला का रंग काषाय—भगवा बनता है ।

मनुष्यके सभी रागद्वेष जलकर खाक हो जाते हैं तभी वह संन्यासी बनता है, और इस संन्यास-अवस्थाका सूचक काषाय रंगके वस्त्र पहनता है ।

१९२१ की लड़ाईमें चौरीचोराके लोगोंने हिंसक वृत्ति अपना-

कर अत्याचार किये। जनता अब भी अहिंसाका तत्त्व समझ नहीं सकी है यह देखकर गांधीजीने सत्याग्रह बन्द कर दिया। उस समय अहमदाबादमें एक काषाय-वस्त्रधारी राजद्वारी संन्यासी रहते थे। उन्होंने गांधीजीसे कहा,

'आपने सत्याग्रह बन्द कर दिया; आप कायर हैं। युद्धमें जानेके बाद सच्चा क्षत्रिय पीछे नहीं हटता। परन्तु आप तो बनिये हैं न? टेकका निभाना आप क्या समझें?'

गांधीजीने कहा, 'आपने ये वस्त्र भगवे रंगमें रंगे हैं, परन्तु सच्चे अर्थमें ये गेरूए नहीं बने हैं।'

इस एक ही वाक्यमें गांधीजीने संन्यासीको सूचित कर दिया कि उसने अपने रागद्वेशको जलाये बिना ही भगवा वस्त्र धारण किया था।

---

३९. सोनेके बजाय झोंके खाना ज्यादा अच्छा

कई बार बापूको अतिश्रमके कारण लिखते-लिखते ही नींद आ जाती थी। इससे उनका हाथ निद्राक्रान्त मनुष्यकी तरह एकाएक लकीर खींचकर रुक जाता और कलम कागजसे नीचे उतर जाती। थोड़ी देरके बाद उनकी नींद टूटती। नींदसे चौंके हुए मनुष्यकी तरह गरदन एक ओर फेरकर वे लिखने लगते।

इस प्रकार दो-तीन बार होते देखकर श्री मोहनलाल पंड्याने बापूसे कहा,

'इससे तो आप थोड़ी देर सो जाते तो अच्छा होता।'

गांधीजीने कहा,

'आँखें थक जाती हैं तो आराम ले लेती हैं। केवल आँखोंको ही आरामकी जरूरत हो तब सारे शरीरको क्यों आराम दूँ। यदि

मैं सो जाऊँगा तो आँखोंकी थकावट दूर हो जाने के बाद भी शरीर बिछौनेपर पड़ा रहेगा और इस प्रकार प्रमादका प्रवेश हो जायगा। शरीरके जिस अंगको आरामकी जरूरत हो उस अंगको ही आराम देना चाहिये। और सो भी जरूरत से अधिक एक क्षण भी नहीं।'

ऐसा दृष्टिकोण होनेके कारण यदि दाहिना हाथ थक जाता तो बापू उसे आराम देते, परन्तु तुरन्त ही बाँये हाथसे काम लेने लगते। पाँव थक गये हों तो पेटको मेजके आधारसे टिकाकर पाँवोंको लम्बा रखकर आराम देते। किन्तु इस परिस्थितिमें भी वे पढ़नेका या लिखनेका काम जारी ही रखते।

---

४०. गांधीजीकी मुमुक्षा

'जब गांधीजी भारतमें आये तभीसे मैं उनसे आकृष्ट हुआ था और उनकी मृत्युके बाद भी वह आकर्षण क़ायम रहा है बल्कि क्रमशः बढ़ता रहा है। परन्तु यह आकर्षण इसलिए नहीं था कि वे राजकीय व्यक्ति थे बल्कि इसलिए था कि वे एक पावन पुरुष थे। गांधीजीके प्रति मेरा खिंचाव राजकीय दृष्टिसे नहीं था। परन्तु महात्माके नाते उन्होंने मुझे खींचा था।

'गांधीजीके व्यक्तित्वके इस पक्षको प्राधान्य देनेमें मेरा कोई दृष्टिदोष नहीं, यह बात इस छोटेसे प्रसंगसे स्पष्ट हो जायगी।

गोलमेज परिषद्में एक विद्वान् सज्जनने गांधीजीसे पूछा,

'स्वराज्यमें किन-किन बातोंका समावेश होता है? स्वराज्यकी व्याख्या कैसे की जाय?'

गांधीजीने उत्तर दिया,

स्वराज्यकी व्याख्या क्या होगी? मनुष्य जितना पाचन कर

सके वही स्वराज्य। स्वराज्य दिया नहीं जाता, वह तो लेने ही की वस्तु है। मैंने स्वयं भी स्वराज्य दिलानेके लिए कहाँ जन्म लिया है! केवल लोकदृष्टि उस ओर मोड़नेके लिए मैंने जन्म लिया है। अर्थात् हम जितना प्राप्त करें–स्वयं जितना प्राप्त करें उतना स्वराज्य है। स्वराज्यके लिए मेरी अन्तिम व्याख्या तो यह है कि 'मनुष्य जिससे मुक्तात्मा बने–जो मनुष्यको मोक्ष दे–वह स्वराज्य है।'

---

४१. व्यभिचार ही अखरता है

बापूकी एक दृष्टि ध्यान देने योग्य है। वे कहते थे कि 'पाँच महाव्रत हमारे समाजमें अभी ओतप्रोत नहीं हुए हैं।'

'कोई चाहे झूठ बोले, हिंसा करे, कोई किसीकी वस्तु ले ले या अति संग्रह करे तो भी हमारे समाजका रोआँतक हिलता नहीं। और यदि किसीने व्यभिचार किया तो तुरन्त ही वह व्यक्ति समाजकी आखोंपर चढ़ जाता है, और खूब बदनाम होने लगता है। अन्य चार व्रतोंके भंग होनेपर किसी प्रकारका वाग्विरोध-तक नहीं, और इसमें इतना ऊहापोह! यह बात ही साक्षी देती है कि समाजकी दृष्टिमें व्रतकी कोई कीमत नहीं। समाज व्यभि-चारका विरोध केवल इसलिए करता है कि हमारे यहाँ व्यभिचार सदियोंसे गंदी चीज माना जाता है। अन्य दूषणोंका वह विरोध नहीं करता, क्योंकि वे समाजकी गतानुगत रूढ़ियोंमें गंदे नहीं माने जाते।'

---

४२. बापूके पुत्र—विकारके और विचारके

गांधीजीके ज्येष्ठ पुत्र हरिलालने एक बार कलकत्तेके किसी मुसलमानसे पैसे उधार लिये थे। थोड़े समयके बाद उस मुसलमान भाईका एक पत्र गांधीजीके पास आया,

'मैंने आप जैसे अच्छे व्यक्तिका पुत्र समझकर हरिलालको पैसे दिये थे। अब वे वापस नहीं करते। अस्तु, कृपया आप जिस प्रकार पैसे मुझे मिल जायँ ऐसी व्यवस्था कीजियेगा।'

गांधीजीने उसे उत्तर भेजा,

'हरिलाल बहुत समय पहले मुझसे अलग हो गया है। और वह स्वतन्त्र व्यापार करता है, इसलिए उसके लिये हुए पैसोंकी जिम्मेदारी मेरी नहीं है। और पैसे देते समय आपने मुझसे पूछा नहीं था और न मैं उसका जामिन हुआ हूँ।'

'मेरे पास यदि मेरे अपने पैसे होते तो भी मैं आपको दे देता, परन्तु मेरा जीवननिर्वाह तो प्रजाके पैसेसे होता है; मेरे पास मेरी अपनी कोई जायदाद नहीं।'

'और, आपने हरिलालपर विश्वास रखा, परन्तु हरिलाल तो मेरे विकारसे उत्पन्न पुत्र है। मेरे विचारसे उत्पन्न कई पुत्र हिन्दुस्तानमें हैं। उनमेंसे किसीपर यदि आपने विश्वास किया होता तो आपको पछतानेका समय न आता।'

---

४३. मृत्युकी मृत्यु

समापन-रूपमें महाराजने कहा,

'अनेक व्यक्ति पूछते हैं कि गांधीजीका वाद कौन-सा है? किन्तु सच पूछो तो उनका कोई वाद ही न था। न था समाजवाद

और न था काँग्रेसवाद। वादकी दुम पकड़ कर तो हम बैठे हैं। परन्तु उनका वाद तो था सिद्धान्तवाद।

'कोई भी बात यदि सिद्धान्तके अनुरूप न हुई तो अत्यन्त प्रिय होनेपर भी वे उसे फेंक देते।

'जीवनमें अनेक प्रसंगोंपर उन्होंने बन्धनत्याग किया है। किन्तु वह भी जबतक अपने सिद्धान्तकी हानि न हो तबतक। सिद्धान्तकी बलि देकर बन्धनत्याग नहीं हो सकता, किन्तु सिद्धान्तकी मर्यादामें—जहाँतक उसे आँच न आये, योग्य बन्धनत्याग हो सकता है ऐसा उनका सिद्धान्त था।

'और वह सिद्धान्त था सत्यका। सत्य प्राप्त करनेका साधन था अहिंसा। उसी सिद्धान्तके लिए उन्होंने अपना शरीर समर्पित किया।

'और जबतक वे जीवित थे, मृत्यु भी जीवित थी। उनको मारकर मृत्यु भी मर गयी।'

---

४४. 'सृजाम्यहम्'

[बापूके भस्मविसर्जनके प्रसंगपर १२ फरवरी १९४८ के दिन श्री रविशंकर महाराज द्वारा साबरमती आश्रममें की गयी प्रार्थना]

हे प्रभो! अधमोद्धारक, कृपानिधान, सर्जन तथा संरक्षण करनेकी जो प्रतिज्ञा तूने ली थी, वह वेद, उपनिषद् और गीता द्वारा हमें ज्ञात हुई थी। किन्तु उसकी प्रतीति न थी। आज तूने उसकी प्रतीति करवायी।

तेरी प्रतिज्ञा तो यह है कि,

'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥'

'जब अधर्म बढ़ जाय और धर्म डूब जाय तब मैं अवतार लूँगा और साधुताकी रक्षाकर दुष्टताका नाश करूँगा।'

इस प्रतिज्ञाको पूर्ण करनेके लिए तूने गांधीजी, महात्माजी, बापूजीके नामसे प्रकट होकर मायावी साम्राज्यशाहीके आवरणसे हमें मुक्त कर दिया। और सत्य-अहिंसाके पथपर, ऊँच-नीचके भेद भुलाकर, जनसमाजका पोषक शारीरिक श्रम करके जीनेका मन्त्र दिया।

प्रभो, तेरा अवतार-कार्य पूर्ण हुआ कि तूने अपनी माया समाप्त की। तेरा अंश विलीन होनेके साथ विश्वके उत्कर्षके लिए साधनरूप बना हुआ पंच महातत्त्वोंका पावन शरीर अग्निदेव-को अर्पण करनेके पश्चात् प्रसाद-स्वरूप रहे हुए इस पृथ्वीतत्त्व-को तेरी ही विभूतिरूपमें बहती हुई इस पतितपावन साबरमतीको हम अर्पित करते हैं। इस भस्म-विसर्जनके समय हमारी तुमसे यही अभ्यर्थना है कि तेरी सत्ता हमपर शाश्वत रहे।

---

४५. सत्यनारायणके द्रष्टा

[सर्वोदयके दिन श्री रविशंकर महाराज द्वारा अहमदाबादके हरिजन आश्रममें, नगर समितिकी सभामें और अमरबावलीपर मजदूरोंकी सभामें दिये हुए प्रवचनोंमेंसे]

सर्वत्र घोर अन्धकार था। यकायक एक तेजःपुञ्जका प्रकाश हुआ और कुछ दिखाई दिया। परन्तु इतनेमें वह तेजःपुञ्ज अदृश्य हो गया। अब राह नहीं मिलती। बापूने तो सत्य-नारायणके दर्शनके लिए ही जन्म लिया था। सर्वप्रथम उन्होंने

अपने माता-पितामें ही उसके दर्शन किये और तत्पश्चात् उन्हें विराट् स्वरूपका दर्शन हुआ। उसमें उन्होंने अहिंसाकी झाँकी देखी; मोहरहित प्रेमसे अहिंसा और उसमेंसे अस्तेय तथा अपरिग्रह मिले। और उस अहिंसासे ही उनको ब्रह्मचर्य, शारीरिक श्रम, निर्भयता और अस्पृश्यता-निवारण मिले।

इन सभीको अपनानेके लिए उन्होंने देशका प्रेमसे आह्वान किया और श्रम करनेका अनुरोध किया। विशेष रूपसे उन्होंने कहा कि ईश्वर-प्राप्तिके लिए किसी भी मार्गसे हम जा सकते हैं।

ऐसे महान् पुरुषका मैं क्या वर्णन करूँ? वे ज्ञान-स्वरूप पैदा हुए थे। उनकी कीर्ति जीवनके अन्तिम श्वाँसतक बढ़ती गयी थी। वे आये और गये। हम उनको पहचान न सके यही हमारा दुर्भाग्य है। परन्तु अब हम उनका चिन्तन करें और वे हमें विराट्-स्वरूपका दर्शन करायें ऐसी प्रार्थना हम आजके दिन करें।

× × ×

बिना अन्न तथा वस्त्रके हमारा काम चल सकता है, किन्तु बिना प्रार्थनाके नहीं। आत्मा अमर है। उसे भी खुराक मिलनी चाहिये। बापू सदा प्रार्थना द्वारा ही आत्माको खुराक देते थे। आज हमारे बीचमें बापूका पंचतत्त्वोंसे बना हुआ शरीर तो नहीं है, परन्तु हम यदि उनकी आत्माका चिन्तन करेंगे तो अवश्य ही हमें उनके सच्चे दर्शन होंगे।

ईश्वर भी कहता है कि जो मनुष्य मेरा प्रेमपूर्वक चिन्तन करता है उसे मैं बुद्धियोग देता हूँ, जिसके द्वारा वह मुझे प्राप्त कर सकेगा। हम यहाँ बापूका स्मरण करनेके लिए एकत्र हुए हैं। वे भी बुद्धियोग प्राप्त करके ईश्वरके पास गये हैं। उनके जीवनका चिन्तन करेंगे तो हम कल्याण प्राप्त कर सकेंगे।

बापू हमारे लिए कई चीजें रखते गये हैं। सभी चीजोंका

वर्णन करते समय कँपकँपी हो आती है। बोलना सरल है, किन्तु आचरण करना अत्यन्त कठिन है। और इसी कारणसे उनकी वस्तुओंके बारेमें बोलते समय देह काँप उठती है।

भारतके लिए जो मार्ग बापूने बताया वह बहुत ही सरल और सुगम्य है। सीधे पथपर सीधे जानेवाले कभी रास्ता नहीं चूकते; टेढ़े रास्तेपर जानेवाले केवल रास्ता ही नहीं भूलते बल्कि वे टेढ़े पथपर चलते-चलते उलझ जाते हैं और उन्हें सच्चा मार्ग कभी नहीं मिलता।

बापूके निर्दिष्ट पथ द्वारा देश सुखी होगा। स्वयं देशकी स्वतन्त्रता एवं समृद्धिकी रक्षा करनी हो तो हमें उनके बताये पथपर ही चलना होगा। आज प्रजा भयभीत है। इस भयसे पार उतरनेके लिए बापूके बताये मार्गपर चलनेकी शक्ति परम-कृपालु परमात्मा हमें प्रदान करें यही प्रार्थना है।

× × ×

हम अनेक कार्योंके लिए यहाँ एकत्र हुए थे और अनेक सत्कर्मोंके लिए हमने प्रतिज्ञा ली थी। पूज्य बापूने प्रतिज्ञाका निर्वाह करनेके लिए तपश्चर्या आरम्भ की थी। और उनके तपकी सिद्धिसे ही अहमदाबादके मजदूर और मजदूर-महाजनोंकी संसारमें एक बेजोड़ संस्था बनी है। केवल महात्माजीकी तपश्चर्यासे हमने इतना प्राप्त किया तो सोचिये कि अहमदाबादका हरेक मजदूर अपनी प्रतिज्ञाके पीछे थोड़ा-सा भी तप करे तो क्या न प्राप्त कर सके?

पूज्य बापूने हमें जीवनका उत्तमोत्तम मार्ग बताया। परन्तु यदि हम अपने हृदयसे पूछें तो पता चलेगा कि उनके आदेशोंका हमने कितना पालन किया है। पूज्य बापूके सिद्धान्तोंका पालन करनेवाला भयमुक्त बनता है। उसका मार्ग सरल बनता है और सुगमतासे वह ईश्वरके निकट पहुँच सकता है। महान् पुरुषोंके

जीवनका मनन करनेसे और उनकी उत्तम वस्तुओंके स्मरण करनेसे ही जीवन सच्ची राहसे दूर नहीं जाता।

प्रतिज्ञाका माहात्म्य महान् एवं गम्भीर है, इसलिए उसका स्मरण करते हैं। देशमें मजदूरोंका स्थान बड़ा है। वे सर्जन करनेवाले हैं और इस सर्जनकी रक्षा करनेके लिए मजदूरोंको प्रतिज्ञाके साथ कोई चरी—परहेज—पालना चाहिये। परहेजसे ही ताकत बढ़ती है। पूज्य गांधीजीने प्रतिज्ञाओंके पीछे तपश्चर्या की और इसलिए वे विश्वको सन्देश दे सके। तपश्चर्याका अर्थ है जीवनको सत्य तथा अहिंसाके पथ द्वारा पवित्र बनाना।

बापूकी अहिंसा उनके सत्यनारायणके दर्शनकी चरी थी। वे सतत जाग्रत् थे। हरेक कार्य के पीछे वे विचार करते, क्योंकि मनुष्य सत्कर्मके लिए जाग्रत् न रहे तो नीचे गिरता है। आप सभी अपने जीवनके तमाम कार्योंके लिए जाग्रत् रहियेगा।

पूज्य बापूने मनुष्यको शक्तिशाली बनाया है। धन मिलनेपर मनुष्यके पाँव टूट जाते हैं और वह अपंग बनता है। पूज्य महात्माजीने जनताको श्रम दिया। इससे मनुष्य हताश या निर्बल नहीं हुआ। परन्तु मनुष्य ऊपर उठा और ताकतवर बना।

अहमदाबादके मजदूरोंको चाहिये कि वे घर-घर जाकर बापूके आदर्शोंकी घोषणा करें। क्योंकि भूलसे भी ईश्वरकी ओर जानेवाली राहसे बढ़ोगे तो भी जैसे कोल्हू गन्नेको अपनेमें खींच लेता है, वह तुम्हें अपने पास खींच लेगा। और कोई आपके सत्कार्यमें सहयोग दे तो उसको स्वीकार करिये।

बापूके सद्‌वाक्य

१. आचारहीन विचार चाहे कितने ही सुन्दर हों—नकली मोतीके समान हैं।

२. परमेश्वर और प्रकृति एक ही है।

३. देवता परमेश्वरकी एक शक्ति है। उसकी उपासना द्वारा भी हम परमेश्वरके पास जा सकते हैं।

४. सन्त पुरुष एकान्तमें रहकर केवल विचारसे ही सेवा कर सकता है, ऐसी सम्भावना तो है, किन्तु ऐसा सन्त पुरुष कदाचित् लाखोंमें एक ही होता है।

५. शरीरका अस्तित्व पूर्ण अहिंसाका विरोधी है। पूर्ण अहिंसाके बिना सत्यका साक्षात्कार असम्भव है। परन्तु जो निर्विकार है वह सत्यके निकट जाता है, और ऐसे पुरुषके लिए इतना पर्याप्त है।

६. संस्थाओंमें भोजनका बदला धन ही नहीं, किन्तु नियम-पालन है।

७. मनुष्यके सामने यदि कोई भी वस्तु स्पष्ट है तो वह है मृत्यु! फिर भी ऐसी अनिवार्य प्रत्यक्ष चीजका बहुत डर लगता है यही एक आश्चर्य है। यही ममता है, नास्तिकता है। और उससे पार करानेवाला धर्म केवल मनुष्योंको ही लभ्य है।

८. पाप व पुण्य मृत्युके पश्चात आत्माके साथ जाते हैं।

९. यदि हिन्दू धर्मको जीना है तो अस्पृश्यताको मरना ही होगा।

१०. ईश्वरको उसके कार्योंके सिवा अन्य किसी भी रीतिसे किसीने देखा नहीं।

११. धर्म बाह्य कर्मकाण्डोंमें नहीं है किन्तु मनुष्यकी उच्चतम वृत्तियोंका अन्तःकरणसे अधिकाधिक अनुसरण करनेमें है।

१२. बीमार मनुष्य भी सेवा कर सकता है। वह इस प्रकार मिली हुई शान्तिका उपयोग भगवच्चिन्तनमें कर सकता है। वह अपना क्रोध और अपनी आतुरताको दबाकर सेवकोंमें प्रेम फैला सकता है।

१३. बीमार मनुष्य सेवा लेता है और कर नहीं सकता इसका उसे अफसोस रहता है। यह बड़ी भूल है। वह शुद्ध विचार द्वारा सेवा कर सकता है। कमसे कम सेवा लेकर सेवकों-को प्रेमप्लावित—प्रेमाच्छादित—करके सेवा कर सकता है। वह अपने आप आनन्दित रह कर भी सेवा करता है। ईश्वरका शुद्ध चिन्तन एक सेवा है यह भी कभी न भूलें।

१४. धर्म बुद्धिगम्य वस्तु नहीं, हृदयगम्य वस्तु है।

१५. हिन्दू धर्मके महत्त्वके लक्षण हैं ईश्वर, आत्मा और पुनर्जन्ममें श्रद्धा।

१६. पवित्र मनुष्यके शरीरमें शास्त्र मूर्तिमान् होते हैं।

पूज्य रविशंकर महाराज—मेरी दृष्टिसे

१९४९ के अप्रैलके आखिरमें मेरे एक विद्यार्थी मुझसे मिलने आये। गर्मीकी छुटियाँ कैसे बितायीं यह वर्णन वे अपनी लाक्षणिक शैलीमें करने लगे। उनकी बात करनेकी छटा ऐसी थी कि जिसका वर्णन करते, उस वस्तुको हम मानों प्रत्यक्ष ही देखने लगते।

और बादमें उन्होंने सविस्तर पूज्य महाराजके संस्मरण कहना शुरू किया, क्योंकि छुट्टियाँ उन्होंने महाराजके पास बितायी थीं। उन संस्मरणोंने मेरे मनपर इतना असर किया कि मैंने महाराजसे मिलनेका निर्णय कर ही लिया। उस समय

श्री महाराज राधनपुरमें रहकर दुष्काल-पीड़ितोंकी सेवा कर रहे थे। मैंने महाराजसे मिलनेकी अनुमति माँगी, और तुरन्त ही मुझे निमन्त्रण देता हुआ तार महाराजकी ओरसे मिल गया।

उसके बाद दस-पन्द्रह दिन मैंने राधनपुरमें बिताये। इन दिनों मुझे महाराजश्रीके उदार तथा प्रेमपूर्ण हृदयका परिचय मिला। 'मानवताके दीप' नामक गुजराती पुस्तक जिन्होंने पढ़ी है वे जानते हैं कि महाराजश्रीका स्नेह कितना गहरा एवं व्यापक है। और इस स्नेहने ही श्री महाराजके पास उस पुस्तकमें वर्णित अद्भुत कार्य करवाये थे। महाराजके इस स्नेहके एक-दो दृष्टान्त हम यहाँपर देख लें।

स्नेहका फौवारा

मैं राधनपुर रहा, उन दिनों मैंने श्रीमहाराजके बापूजी-विषयक ये संस्मरण लिख लिये थे। इन संस्मरणोंको पुस्तकाकार प्रकाशित करनेकी मेरी इच्छा थी। इसलिए महाराजके सामने पढ़कर मुझे अनुमति प्राप्त करनी थी। महाराज दो-तीन दिनके लिए पर्यटनमें निकलनेवाले थे। अधिक दिनोंकी रुकावट मेरे लिए अशक्य थी, क्योंकि वर्षाके दिन आ रहे थे और उस मौसिममें राधनपुरसे बाहर जानेके सभी मार्ग बन्द हो जाते हैं। श्रीमहाराजने अपने प्रवासके पहले दिनका कार्यक्रम बहुत ही सूक्ष्मतासे निश्चित कर लिया था।

अकालके समयमें यह कार्यक्रम अधिक महत्त्व रखता ही था, और वह उनके हृदयके अत्यधिक निकट भी था। फिर भी मैं जिनके यहाँ ठहरा था उन श्री माणकलाल वखारिया तथा मेरे प्रति निर्व्याज स्नेहके कारण ही उन्होंने अपना सुयोजित कार्यक्रम एक दिनके लिए स्थगित करके यह पुस्तक देख ली।

एक बार मैं श्रीमहाराजके साथ जीपमें बनासकांठाका एक विस्तृत चक्कर लगाने निकला था। किसी वाघरी (वागुरिक) के लड़केने कोई अपराधपूर्ण काम किया था, और उसपर मुकदमा चल रहा था। प्रस्थानके अगले दिन महाराजश्रीने उस लड़केको सन्देशा भेजवाया कि वह वारइ गाँवकी अमुक जगहपर खड़ा रहे। किन्तु लड़का वहाँ आया नहीं था। महाराजश्रीने ग्रामजनों-को सूचना दी : 'जब मैं प्रवासका दौरा पूरा करके ग्यारह बजे लौटूँगा तब उस लड़केको यहाँ आनेके लिए कहना।' लौटते समय ग्यारहके बारह बज गये, फिर भी उस लड़केका पता नहीं था। केवल उसीके लिए महाराज जीपको गाँवमें ले गये, किसी बनियेकी दुकानपर बैठे और लड़केकी खोजमें एक आदमी भेजा। थोड़ी देरके बाद लड़का तो नहीं, पर उसका बाप आया। उसको साथमें लेकर हम राधनपुर लौटे। रास्तेमें उसको महाराजने धमकाया। किन्तु मैंने देखा कि उस धमकानेके पीछेका उद्देश्य केवल स्नेह ही था। उस लड़केको महाराज बचाना चाहते थे, और केवल इसी हेतुसे अनेक काम पड़े थे, देर हो गयी थी, दो-दो बार बुलानेके पश्चात् भी वह लड़का आया न था, तो भी महाराज गाँवमें रुके थे।

आदर्श एवं व्यवहारका समन्वय

इस प्रसंगसे महाराजश्रीके स्वभावका एक दूसरा पहलू भी व्यक्त होता है। गांधीवादी महाराज जितने आदर्शवादी हैं उतने ही व्यवहारकुशल भी है। लोगोंको समझा-बुझाकर और आवश्यकता होनेपर डाँटनेका दिखावा करके भी सच्ची बात निकलवानेकी कला भी वे जानते हैं। उस लड़केके बापसे उन्होंने गुनाहकी सभी बातें जान लीं, और विशेषकर यदि उसको दण्ड जुरमाना मिला तो कहाँतक जुरमाना भरनेकी उसकी शक्ति

है यह युक्तिपूर्वक जान लिया, और इस प्रकार लड़केको मुक्त करवाया।

अपने राधनपुर-निवासके दरम्यान मैंने महाराजश्रीकी इस शक्तिके अनेक दृष्टान्त देखे। लगातार दुःखसे चलनी-से बने हुए ग्रामीणों या मुफ्त तकावी—सरकारी सहायताके इच्छुक लुच्चे किसानोंसे लेकर तहसीलदार तथा प्रजाको परेशान करनेवाले जमींदारतक अनेक प्रकारके लोग महाराजश्रीसे मिलने आते। उनमेंसे हर एकके साथ बात करनेकी एक-सी फिर भी विविध पद्धति देखकर मैं विस्मित हो जाता। आनेवालोंमेंसे सत्य बोलनेवाले शायद आधे ही होते, किन्तु हर एकके साथ वे कुशलतासे व्यवहार करते। यदि उनमें यह कुशलता नहीं होती तो बनासकांठाके प्रदेशमें जो उत्तम सेवाकार्य उन्होंने किया है उसमेंसे एक चौथाई सेवा भी वे शायद ही कर सकते। यह एक सत्य है कि लोकसेवकके लिए आदर्शताकी भाँति व्यावहारिकता भी एक महत्त्वका गुण है। आदर्शकी ओर दृष्टि रखकर व्यवहारकी कड़ी भूमिपर कदम रखे तभी लोकसेवक कोई भी हेतुसिद्धि प्राप्त कर सकता है।

सरकारी रीतिसे

सरकारने महाराजको यद्यपि कोई पदवी नहीं दी थी, फिर भी सरकारी अफसरकी रीतिसे ही वे काम करते थे। अलबत्ता, उसमें ब्रिटिश युगके काले-गोरे अफसरोंकी जो-हुक्मी, स्वार्थ और संकुचितता न थी।

किसी भी तहसीलदारको वे पत्र लिखते तो इस प्रकार लिखते : 'आपके तहसीलमें कुआँ खुदवानेकी इतनी-इतनी सुविधाएँ हैं। फिर भी आपने उस कार्यको पूरा करनेमें सहायता नहीं

दी इसलिए काम अधूरा ही रह गया है, और यह कार्य फौरन ही होना चाहिये। पू० महाराजके ऐसे पत्र या सन्देश मुझे सरकारके अर्धसत्ता प्राप्त—डैमि ऑफिशियल—खरीतोंकी याद दिलाता।

प्रजा यदि कोई शिकायत लेकर उनके पास आती तो उचित लगनेपर वे कहते : 'अच्छा, शायद आपकी शिकायत दूर हो जायगी।' बादमें वे सहायक-कलेक्टरको जा मिलते और उनकी धारणाके अनुसार कार्य पूरा हो जाता। ऐसे दो-एक दृष्टान्त मुझे अच्छी तरह याद हैं :

राधनपुरके कलेक्टरने घोषणा की थी कि जिन लोगोंके पास धान्यका संग्रह हो वे अमुक दिनोंमें आकर लिखवा जायँ। अवधि पूरी होनेके बाद पुलिसने एक संग्रहकी जाँच की और वहाँसे अनाजका बड़ा संग्रह पकड़ा गया। नन्हेंसे गाँवमें कुहराम मच गया। नवाबशाहीके दिनोंमें प्रजाने ऐसा देखा भी नहीं था और ऐसी बातें ज्यादा समझती भी न थी। गाँवके थोड़े अगुवा लोगोंने महाराजश्रीको परिस्थिति समझायी। श्री माणेकलाल वखारिया तथा दूसरे अगुवोंने मिलकर अवधिके दिन बढ़ानेके लिए खाद्य-सचिवसे प्रार्थना की और लिखा कि पूज्य रविशंकर महाराज भी इससे सहमत हैं। अवधि बढ़ानेका हुक्म तो पाँच-छ दिनके बाद आया, किन्तु इतने दिनोंमें दूसरी किसी भी जगह अचानक जाँच न हुई। पुलिसने जाँच करना बन्द कर दिया, और बम्बईसे अवधि बढ़ानेका हुक्म मिला। इन दोनों बातोंका श्रेय महाराजश्रीको ही था।

शिकायत दूर करायी

एक दिन एक अद्‌भुत घटना हुई। सारे राधनपुरकी स्त्रियों-का लगभग चौथाई भाग महाराजश्रीके निवासस्थानपर दोपहर-

के समय पहुँचा। ऐसा समाचार महाराजश्रीको मिला गया था कि स्त्रियोंका शिष्टमण्डल—डैप्यूटेशन—मिलने आनेवाला है। इसलिए वे तैयार ही थे। बिना किसी प्रकारकी व्यवस्था तथा चौकसीके इन स्त्रियोंने—जिनकी अगवानी विधवा वृद्धाएँ करती थीं—कहना शुरू किया, 'देखो, ऐसी सड़ी हुई मकई हमें मिलती है। जन्म लेनेसे आजतक ऐसी मकई खायी नहीं है, और आज इसे खानेकी नौबत आयी है। और देखिये इसमें कितने कीड़े हैं! हम जैन धर्मी लोग कभी कीड़ेवाला अनाज पीसते-पिसवाते नहीं; इससे तो हिंसा होती है।' महाराजश्रीने शोरगुल मचाती बहनों-को समझानेका प्रयत्न किया, परन्तु वे पूर्णतया सफल नहीं हुए, क्योंकि महाराजका अहिंसक शास्त्र समझनेके लिए उन बहनोंके पास धैर्य नहीं था; शायद उतनी सूझ भी न थी। राधनपुरके पिछले ५०० या १००० वर्षोंमें अभूतपूर्व इस प्रसंग—बहनोंकी सामूहिक हलचल—के बाद थोड़े ही दिनोंमें मकई अनिवार्यतः लेनेका हुक्म दूर हुआ, और वह महाराजके प्रभावसे ही।

शरीर-सम्पत्ति

महाराजश्रीकी शरीर-सम्पत्तिके बारेमें 'मानवताके दीप' नामक किताब अच्छा परिचय देती है। उनके इस स्वास्थ्यका कुछ परिचय मुझे राधनपुरमें मिला।

महाराजश्रीको पैदल चलनेका बड़ा शौक है। एक बार वे धूपमें २०-२५ मील चलकर दूसरे दिन राधनपुर आये। छासठ वर्षकी उम्रमें, मई-जूनकी भयंकर धूपमें बनासकाँठेकी मरुभूमि-पर पैदल चलना तो महाराजसे ही हो सकता। इस प्रसंगका वर्णन करते हुए श्री महाराजने कहा, 'उस समय तो प्रतीत होता था कि अभी सिर फट जायगा। राधनपुरतक पहुँचनेमें भी शंका थी।'

किन्तु इस प्रसंगसे यह भी विदित होता है कि महाराजश्री-की पहलेकी और आजकी शरीर-सम्पत्तिमें थोड़ा अन्तर पड़ गया है। दूसरे दिन महाराजश्री अत्यन्त थके हुए जान पड़ते थे। और दो-तीन दिन आराम लेनेके बाद ही थकावट उतरी। सादगीके आग्रही और आधुनिकताकी हरेक बातको एक-सा स्वीकार्य नहीं माननेवाले महाराजश्रीने उस दिन अपनी बैठक श्रीमाणेकलाल वखारियाके बिजलीके पंखेवाले कमरेमें रखनी पसन्द की।

जीवनका आनन्द

गांधीवादी लोग जड़ भरत जैसे शुष्क होते हैं ऐसी जो धारणा कुछ लोगोंके मनमें है उसे महाराज तथा काका कालेलकर असत्य ठहराते हैं। काका कालेलकरको जिस प्रकार जीवनके अनेक क्षेत्रोंमेंसे आनन्द प्राप्त होता है उसी प्रकार महाराज भी विविध वस्तुओं और क्षेत्रोंमेंसे जीवनका रस प्राप्त करते हैं।

उनके जीवनानन्दका एक क्षेत्र तो परिचयमें आनेवाले व्यक्ति हैं। जिस स्नेह और सद्भावके साथ वे इन व्यक्तियोंके साथ बर्ताव करते हैं वह अनन्य है। साथ-साथ वह स्नेह बिलकुल ही निदम्भ और निर्हेतुक होता है। उदाहरणार्थ, बनासकाँठेके किसी महत्त्व-के कार्यके लिए वे जब, सिर्फ एक या दो दिनके लिए बम्बई आते थे तब अपनी बैठकों तथा सभाओंके अलावा जो थोड़ा समय बचता है उसमें वे अपने कितने ही स्नेहियोंसे मिलनेका समय निकालते हैं।

महाराजश्रीका दूसरा रसक्षेत्र है प्रवास। कितना ही लम्बा क्यों न हो, प्रवासमें पैदल चलते या मोटरमें घूमते हुए वे कभी थकते नहीं। अत्यन्त विनयी तथा दूसरोंकी भावनाओंकी कदर करनेवाले महाराज प्रवासमें अपनी बैठक ड्रायवरके पासमें ही रखते हैं। और सहप्रवासियोंको पीछे बैठना पड़ता है। आस-

पासके दृश्य तथा रास्ते देखनेके शौकके कारण ही ऐसा होता है। रास्ते पहचानना और उनकी दिशाओंको समझने-समझानेका उन्हें भारी शौक है; आदत भी है।

महाराज हमेशा समाचारपत्रोंपर दृष्टि डाल लेते हैं। कुछ खास पढ़ने योग्य लगे तो पढ़ते भी हैं। इतने कामोंमें भी वे कभी-कभी कुछ पुस्तकें पढ़ लेते हैं। उनकी चुनी हुई पुस्तकोंमें गांधीवादी विचारधाराकी पुस्तकें विशेष होती हैं। चिन्तन एवं तत्त्वज्ञानकी पुस्तकें भी वे पढ़ते हैं।

महाराजकी मानस-सम्पत्ति

ऐसे उच्च वाचनके कारण, बापू जैसे समर्थ तथा स्वतन्त्र विचारकके संगके कारण, और अपने जन्मजात ब्राह्मण संस्कारोंके कारण उनमें स्वतन्त्र विचारक एवं चिन्तनकी शक्ति है। इस सादे सेवकसे मुझे इस बातकी अपेक्षा न थी। वे केवल सत्याग्रही ही नहीं, आश्रमवासी और सेवक ही नहीं; वे उच्चतर बुद्धिका दर्शन भी करवाते हैं। मैं राधनपुर था तब एक दिन वे श्री बबल-भाई मेहताके साथ दूधकी एक बड़ी योजनाके बारेमें चर्चा कर रहे थे। अगर इस योजनाका अमल होता तो गाँवके लाचार लोग अपना सब दूध व्यापारियोंको बेचते और ये दूधके व्यापारी स्पेशल ट्रेन द्वारा दूधका संग्रह बम्बई जैसे शहरोंमें भेज दिया करते। श्री महाराजने कहा, 'केवल मजबूरीके कारण ही इन लोगोंको जो मिले उसी दामसे दूध बेच देना पड़े, इसपर मुझे बड़ा दुःख है। शहरके दूधकी माँग गाँव क्यों पूरा करे?' बादमें इस प्रसंगके बारेमें बात हुई तो श्री बबलभाई कहने लगे, "पूज्य महाराजके पाससे कुछ भी अधिक प्राप्त करना हो, तो बस यही योग्य मार्ग है। उनके सामने सच्ची पहेली या उलझन रख

दो। और बादमें देखो कि चिन्तन—विचारके कैसे फौवारे उड़ते हैं।'

सिद्ध शिक्षक

पूज्य महाराजकृत पुस्तकोंमेंसे एक पुस्तक उनकी शिक्षक सदृश शक्ति और स्वतन्त्र विचारधाराका परिचय देती है। महाराजश्रीमें सच्चे शिक्षककी शक्ति होगी इसका मुझे कुछ अधिक खयाल न था। किन्तु एक बार राधनपुरकी ईश्वरलाल बोर्डिंगमें भोजनके लिए जाते समय मुझे इसका परिचय मिला।

बोर्डिंगके सुपरिण्टेण्डण्टका पुत्र, जिसकी उम्र कोई चार सालकी होगी, हाथमें ताशके पत्ते लेकर वहाँ आया। मेरा खयाल था, महाराजश्री ताशसे घृणा करते होंगे। किन्तु स्नेहशील महाराजने लड़केके हाथसे ताश लेकर उसके साथ खेलना शुरू किया। थोड़े ताश उसको दिये, और थोड़े अपने पास रखे।

दोनों ताश खेलने लगे। ताशके खेल द्वारा ही महाराजश्रीने उस लड़केकी अंक-विषयक, रंग-विषयक, आकार एवं चित्र-विषयक दृष्टि पनपे इस प्रकार विविध रीतिसे पत्ते खेलते हुए, शिक्षणका जरा भी प्रयास किये बिना ज्ञान देना शुरू कर दिया।

दृष्टान्ततः, बच्चा नहला डालता तो वे उसी रंगका अट्ठा डालते और बताते कि तेरा एक अधिक है इसलिए तू जीता। बीचमें एक बार उन्होंने पानका पत्ता डाला। बच्चा तो जो हाथमें आया उसी पत्तेको डालने लगा। तब उन्होंने पानका ही पत्ता डालनेको कहा। साथ-साथ पान और ईंटका आकारभेद भी समझाया। बादमें अंकसे भी चित्रवाले पत्ते अधिक कीमती होते हैं यह भी समझाया।

गर्मी सहन न होनेसे पंखेके नीचे बैठनेवाले, ताश जैसी राजसी—बल्कि तामसी–चीजको बालशिक्षाका साधन बनानेवाले

महाराजश्री रूढ़िवादी—रूढ़िचुस्त नहीं हैं। बनासकाँठेके विस्तीर्ण दुष्कालपीड़ित प्रदेशमें प्रवास करनेके लिए केवल उनके पाँव या उस प्रदेशमें दौड़नेवाली बसें कम थीं। पैदल प्रवासके शौकीन महाराजश्रीको कारकी इच्छा हुई और जब एक सज्जनने अपनी जीपगाड़ी दी तब वे बहुत खुश हुए। अलबत्ता, तालाब और कुआँ खोदनेवाले मजदूरोंको जो मनुष्य मजदूरी पहुँचाता था उसे मोटरकी अधिक जरूरत है यह सुनकर उन्होंने वह जीप उसे इस्तेमाल करनेको दे दी और अपना प्रवास बहुत कम कर दिया।

महाराज मनुष्य हैं और शायद किसीको उनमें कोई त्रुटि भी मालूम पड़ती होगी। परन्तु वे सच्चे अर्थमें मनुष्य हैं, क्योंकि मानवका प्रथम लक्षण—एकमात्र लक्षण—मानवता उनमें है। उस मानवताकी दुर्दम्य पुकारसे ही प्रेरित होकर उन्होंने अपने जीवनके सुख तथा वैभवका त्याग किया, कमाई छोड़ी, गृहत्याग किया और मूक एवं पीड़ित जनसमूहोंके दुःख दूर करनेका महायज्ञ आरम्भ किया।

हमारी यही प्रार्थना है कि उनका यह महायज्ञ लम्बे समय-तक प्रज्वलित रहे और चारों ओर उन मानवता-दीपककी ज्योति प्रकीर्ण हो।

—विपिन जी० झवेरी